स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–20, अंक–8, श्रावण–भाद्रपद 2069, अगस्त 2012

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग
रामकृष्णपुरम्, नयी
दिल्ली–110022
से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा–4

पिछले कुछ दिनों में ग्रिड के फेल हो जाने से देश की छवि को धक्का लगा है, लेकिन हमें विचार करना होगा कि यह स्थिति इसलिए उत्पन्न हुई है, हम बिजली का उपभोग हद से ज्यादा कर रहे हैं। जैसे–जैसे अमीरों की विलासिता बढ़ रही है, वैसे–वैसे बिजली संकट बढ़ता जा रहा है।

कवर पेज

अ नु क्र म

आवरण लेख

भारी पड़ता अंधाधुंध इस्तेमाल
– डॉ. अश्विनी महाजन /4

किसान

खाद संकट – भंवर में फंसा किसान
– नरेश सिरोही /6

आन्दोलन : ''किसान जमावड़ा''
– दीपक शर्मा 'प्रदीप' /10

कृषि

कृषि जिंसों के वायदा पर प्रतिबंध जरूरी
– जयंतीलाल भंडारी /13

सामयिकी

किसके लिए खोलें बाजार
– निरंकार सिंह /15

समस्या : आग में झुलसता असम
– बलवीर पुंज /19

अर्थव्यवस्था : ट्रिकल डाउन थ्योरी से बचिये
– डॉ. भरत झुनझुनवाला /22

विचार–विमर्श

मानसून और भविष्यवाणियाँ
– महेश परिमल /24

श्रमिक

औद्योगिक श्रमिक हितों का सवाल
– उमेश चतुर्वेदी /27

पर्यावरण

भारत की तीर्थ परम्परा पर खतरा और समाधान
– राजेन्द्र सिंह /30

लेख

13वें राष्ट्रपति भ्रष्टाचार व आतंकवाद को भारत की मुख्य समस्या समझते हैं!
– डॉ. सूर्य प्रकाश अग्रवाल /32

पाठकनामा/2, रपट/34

पाठकनामा

बढ़ती दवाओं की कीमत पर लगे लगाम

स्वदेशी पत्रिका अकसर मैं पढ़ता रहता हूँ। परंतु आज दवा बनाने वाली कंपनियां जिस तरह अपनी दवाओं का मूल्य निर्धारित करती है उसे देखकर लगता है कि सरकार को आम आदमी की कोई फिक्र ही नहीं है। आज कई दवाएं जिनकी कीमत मात्र 10 रुपए है जिसे आम आदमी को 100 या इससे भी ज्यादा चुकानी पड़ रही है। इस खेल में विदेशी कंपनियां के साथ–साथ देशी कंपनियां भी शामिल हैं। यह खुलासा केन्द्रीय कंपनी मंत्रालय की एक रिपोर्ट में किए गया है। जबकि राष्ट्रीय औषधि मूल्य निर्धारण प्राधिकरण (एनपीपीए) ने दवाओं पर अधिकतम मुनाफा कमाने की सीमा सौ फीसदी निर्धारित कर रखी है। लेकिन कंपनियां इस नियम का खुलेआम उल्लंघन करती है। रिपोर्ट में कहा गया है कि कई दवाओं का बाजार मूल्य लागत मूल्य से 200 से लेकर 500 फीसदी अधिक होता है। एक नामी–गिरमी कंपनी तो भारतीय बाजार में दवाएं बेचकर 1122 फीसदी तक मुनाफा कमा रही है। सोचने वाली बात है कि सरकार को इस खेल के बारे में सबकुछ पता है तो फिर सरकार इन कंपनियों के खिलाफ सख्त कदम क्यों नहीं उठाती। हर बार की तरह सरकार कई करोड़ रुपए खर्च करती है जिससे लोगों को सरकारी अस्पताल से निशुल्क दवा मिल सके, लेकिन भ्रष्ट कर्मचारियों के कारण मरीज को दवा ही नहीं मिल पाती है। जिसके कारण मरीज बाहर से दवा खरीदता है। अतः सरकार को मुनाफे कमाने वाली दवा कंपनियों पर अपना नियंत्रण करना जरूरी है, इसके अतिरिक्त कंपनियों के खिलाफ सख्त कानून बनाना भी आवश्यक है। दवा के इस व्यापार में मुनाफाखोरी नहीं होनी चाहिए। **– राकेश कुमार, मीडिया अपार्टमेन्ट, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश**

पानी की बर्बादी को रोके और शहरों में 40 प्रतिशत पेड़ लगाएं

आज मनुष्य अपने विकास और लालच में अपनी जमीन को बंजर बना रहा है। आज अधिकांश नदियों, तालाबों, झील, पोखरों का अस्तित्व मिट गया या कुछ बाकी मिटने वाले हैं। अपनी जीवनदायिनी नदी गंगा, यमुना जैसी को हमने नालों में तब्दील कर दिया है। शहरों को सुन्दर बनाने के लिए हमने पेड़ों को काटना शुरू कर दिया है और कंक्रीट की इमारतों को देखकर हम खुश हो रहे हैं। क्या हमें अब भविष्य के खतरे की आहट ही नहीं सुनाई पड़ रही है। जल ही जीवन का आधार है, जल के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। धरातल पर तीन–चौथाई पानी होने के बाद भी पीने योग्य पानी एक सीमित मात्रा में ही है। उस सीमित मात्रा के पानी का इंसान ने अंधाधुध दोहन किया है। नदी, तालाबों और झरनों को पहले ही हम कैमिकल की भेंट चढ़ा चुके हैं, जो बचा–खुचा है उसे अब अपनी अमानत समझ कर अंधाधुंध खर्च कर रहे हैं। आज भी अधिकतर गांवों में स्त्रियां पीने के पानी के लिए रोज ही औसतन चार मील पैदल चलती है। शहरी करण के कारण गंगा–यमुना के अस्तित्व खत्म हो रहा है। समय आ गया है हम वर्षा का पानी अधिक से अधिक बचाने की कोशिश करें। इसके अलावा शहरीकरण इलाकों में 40 प्रतिशत वृक्ष लगाने का प्रावधान भी करें।

– साज राय, सफदरजंग एंक्लेव, नई दिल्ली

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपए

आजीवन सदस्यता शुल्क: 1,000 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

(ध्यानार्थ : कृपया अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखें)

उन्होंने कहा

जनलोकपाल बिल को लेकर सरकार शुरू से झूठ बोल रही है। यदि हिम्मत है तो खुर्शीद जनता के सामने आएं, फिर साबित हो जाएगा कि झूठा कौन है। **– अन्ना हजारे**

मैंने यूपी सरकार को परिणाम देने के लिए छह महीने का वक्त दिया था। चार महीने बीत चुके हैं। जनता के बीच जो संदेश जाना चाहिए, वह नहीं जा पाया है। **– मुलायम सिंह यादव**

मैं हमेशा पीडब्लूडी के ठेकेदारों से कहता हूं कि अगर मेहनत करोगे, जी–जान लगाओगे तो थोड़ी चोरी कर सकते हो, लेकिन डकैतों की तरह व्यवहार मत करो।

– शिवपाल यादव

राजनीति में उतरने का विरोध करने वाले लोग मुट्ठी भर हैं। अगर दो साल में सरकार जन लोकपाल कानून, स्वराज कानून, राइट टू रिजेक्ट और राइट टू रिकॉल को लागू कर दे तो हम राजनीति से हट जाएंगे।

– अरविन्द केजरीवाल

सरकार आतंकी घटना को भी वोट बैंक के चश्मे से देखती है और इसके खतरनाक नतीजे होंगे।

– शाहनवाज हुसैन

पूरी दुनिया में खाद की खपत के अनुपात में कृषि उपज नहीं बढ़ रही है, जिससे हमारे खेती के तरीके पर ही सवाल उठता है। सरकार किसानों को जैविक अपनाने की बात तो कहती है लेकिन किसी तरह का प्रोत्साहन देने से बचती है।

– नरेश सिरोही

संपादकीय

जब माझी नैया डुबोये, तो उसे कौन बचाये

रायसीना हील्स में प्रणव मुखर्जी को भेजने के बाद कांग्रेस ने फिर से पी चिदंबरम को वित्त मंत्रालय सौंप दिया। कहा गया कि वित्त का विभाग बहुत महत्वपूर्ण है इसलिए प्रधानमंत्री के कंधे पर इस मंत्रालाय का अतिरिक्त भार देना ठीक नहीं है। ये वही वित्त मंत्री हैं, जिनके ऊपर तमाम आरोप लगे थे कि उन्होंने टूजी घोटाले में शामिल ए. राजा जैसे मंत्रियों के कारनामें को अपनी जानकारी में होने दिया और वित्त मंत्रालय के दायित्व को पूरा करने के बजाय उस पर परदा डाल दिया। यूपीए अध्यक्ष सोनिया गांधी की नजर में भले ही पी. चिदंबरम एक काबिल मंत्री हो पर देश की अर्थव्यवस्था जिस दयनीय स्थिति में पहुंच गई है, उसके लिए अगर कोई सबसे ज्यादा जिम्मेदार है तो वह चिदंबरम ही है। यूपीए–1 और यूपीए–2 दोनों पारियों में अधिकतम समय के लिए वित्त मंत्रालय इन्हीं के पास रहा। महंगाई का लगातार बढ़ना और उसके लिए उपाय करने के बजाय बहाने बनाना इन्हीं के जमाने में शुरू हुआ। अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करने के बजाय हर आर्थिक दुर्दशा के लिए कभी भगवान और कभी बाहरी हालात को जिम्मेदार बताकर हालात से भागने की परंपरा इन्हीं से शुरू हुई । अपने को अधिक आंकने की इनकी आदत से न सिर्फ आम जनता बल्कि कांग्रेस के लोग ही त्रस्त रहे हैं। दिग्विजय सिंह और मणी शंकर अय्यर खुलेआम इनकी आलोचना कर चुके हैं। फिर भी पी. चिदंबरम गांधी परिवार के आंख के तारे बने हुए हैं। क्यों? क्या सचमुच मनमोहन सिंह की सरकार में चिदंबरम से काबिल कोई मंत्री नहीं है, या फिर चिदंबरम ही अकेले ऐसे मंत्री हैं, जो कांग्रेस राजनीतिक महत्वकांक्षा और विदेशी ताकतों के छुपे एजेंडों को लागू करने में आनाकानी नहीं करते। पहली स्थिति तो स्पष्ट है, पी. चिदंबरम ने देश की अर्थव्यवस्था को चौपट करने की जोखिम उठाकर भी सोनिया गांधी के एजेंडे को लागू कराया। पहले 65 हजार करोड रुपये की कर्ज माफी और फिर लगभग एक लाख करोड़ के सालाना बजट वाले मनरेगा को बिना किसी मजबूत नीति के लागू करने का फैसला पी. चिदंबरम के जरिये ही लिया गया। वोट जुटाने का यह तरीका देश की अर्थव्यवस्था पर कितना भारी पड़ा यह कांग्रेस अध्यक्ष से ज्यादा कोई नहीं जानता। पूरे चुनाव में कांग्रेस मनरेगा के बजाय मनरेगा के घोटाले का गीत गाती रही है। मनमोहन सिंह की सरकार के ही ताजा आकड़े बताते हैं कि 80 फीसदी ग्रामीण 16 रुपये रोजाना में गुजारा करते हैं। एक तरफ देश का खजाना खाली हो रहा है, दूसरी तरफ ग्रामीण और और गरीब होते जा रहे हैं। नीतियों का घालमेल और घरेलू बाजार को तहस नहस करने की प्रक्रिया पी. चिदंबरम के वित्त मंत्रालय के प्रभार लेने के साथ शुरू हुई और बदस्तूर जारी है। एक बार नहीं बार–बार देसी उद्योगपतियों ने सरकार को चेताया कि यदि इसी तरह वित्त मंत्रालय नीतियों के भटकाव में उलझा रहा तो वह दिन दूर नहीं जब देश की अर्थव्यवस्था चरमरा जाएगी। ऐसी स्थिति अब स्पष्ट दिखने लगी है। आर्थिक विकास की दर, जो नौ फीसदी तक दर्ज की गई थी आज गिर कर छह फीसदी के आस–पास आ गई है और दशा खराब होती जा रही है। पी. चिदंबरम के वित्त मंत्रालय में फिर से आने का सबब बिगड़ते हालात को ठीक करने की कोशिश मानना एक भूल होगी। क्योंकि अगले साल आम चुनाव को देखते हुए कांग्रेस किसी भी कठोर कार्रवाई की इजाजत नहीं देगी। सबको खुश करने और सोनिया गांधी के एजेंडे को लागू करने को अपना दायित्व मानने वाले पी. चिदंबरम पर यदि कोई दबाव है, तो वह है खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश को मंजूरी दिलाना। यूपीए के घटक दलों को साथ रखने के लिए राज्यों के साथ वित्तीय पैकेज की सौदेबाजी करना। कही दबाव है तो संचार क्षेत्र की कुछ विदेशी कंपनियों को कर संबंधी राहत देना, चिदंबरम पर यदि कोई दबाव है तो वह है सरकार बचाये रखने के लिए कुछ नीतियों को ठंडे बस्ते में डाले रखना। देश की अर्थव्यवस्था को टूटने और भारत की बिगड़ती छवि को बचाने की चिंता न तो मनमोहन सिंह को है और न चिदंबरम की। अन्यथा लगातार विदेशी रेटिंग एजेंसियों के भारत विरोधी आकलन और विदेशी मीडिया में भारतीय नेतृत्व के बारे में नकारात्मक टिप्पणियों पर सरकार चुपचाप नहीं बैठती। कहां कल तक भारत को सुपर पावर बनने की खबरे अंतर्राष्टीय मंच से उठती थी, कहां अब भारत को एक अस्थिर देश की संज्ञा मिल रही है। जनता का दायित्व बनता है कि इस सरकार को बिगड़ते हालात के लिए जबावदेह बनाए।

भारी पड़ता अंधाधुंध इस्तेमाल

पिछले कुछ दिनों में ग्रिड के फेल हो जाने से देश की छवि को धक्का लगा है, लेकिन हमें विचार करना होगा कि यह स्थिति इसलिए उत्पन्न हुई है, क्योंकि हम बिजली का उपभोग हद से ज्यादा कर रहे हैं। जैसे–जैसे अमीरों की विलासिता बढ़ रही है, वैसे–वैसे बिजली संकट बढ़ता जा रहा है।

■ **डॉ. अश्विनी महाजन**

बीती 29 जुलाई की रात ढाई बजे उत्तरी ग्रिड के फेल हो जाने के कारण देश की 30 करोड़ जनसंख्या वाले नौ राज्य अंधकार में डूब गए। फैक्ट्रियां, रेल और यहां तक कि दिल्ली की मेट्रो ट्रेन भी ठहर गई। जीवन अस्त–व्यस्त हो गया। मानसून के चलते गर्मी थोड़ी कम थी, फिर भी लोगों की मुश्किलें कम नहीं थी।

हमें छोटे से पड़ोसी देश भूटान से आनन–फानन में बिजली लेकर अत्यावश्यक सुविधाओं को जैसे–तैसे बहाल करना पड़ा। लेकिन 31 जुलाई को एक बार फिर यही समस्या दोहराई गई और इस बार एक नहीं, तीन ग्रिड फेल हुए, जिसकी चपेट में देश के 22 राज्य आ गए और 60 करोड़ की जनता उससे प्रभावित हुई। बिजली के इस संकट के लिए राज्य केंद्र सरकार पर और केंद्र राज्यों पर जिम्मेदार ठहरा रहे हैं। केंद्र की ओर से कहा जा रहा है कि कुछ राज्य अपने कोटे से अधिक बिजली ले रहे थे। इसलिए बिजली आपूर्ति ठप हुई।

गलती किसी की भी हो, बिजली देश की जीवन रेखा है। इसका ठप होना जनजीवन को प्रभावित तो करता ही है, यह देश के लिए अपमानजनक भी है। ऐसी परिस्थितियों में यह कहा जा रहा है कि चूंकि देश में बिजली की आपूर्ति आवश्यकता से कम है, इसलिए इस प्रकार की घटनाएं दोबारा कभी भी हो सकती हैं।

दरअसल, पिछले कुछ समय से बिजली के अपर्याप्त उत्पादन से निजात पाने के लिए इस क्षेत्र में आवश्यक निवेश नहीं हो रहा है। मांग और आपूर्ति पिछली चार पंचवर्षीय योजनाओं में बिजली उत्पादन लक्षित क्षमता से हर बार लगभग आधा ही रहता रहा है। पिछली चार योजनाओं की

कुल लक्षित वृद्धि 2 लाख 12 हजार मेगावाट की थी, जबकि बिजली का उत्पादन रहा मात्र 1 लाख 8 हजार मेगावाट। इसी तरह ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में घोषित लक्ष्य 1 लाख मेगावाट का था, जबकि वास्तविक वृद्धि 50 हजार मेगावाट ही अनुमानित है। वर्ष 2011–12 के दौरान देश में बिजली की आपूर्ति और मांग में 9.3 प्रतिशत का अंतर था, जबकि सर्वाधिक मांग (पीक ऑवर में) और आपूर्ति में 12.9 प्रतिशत का अंतर था। बिजली की मांग लगातार 9 से 10 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ती जा रही है, जबकि इसकी आपूर्ति मात्र 7.7 प्रतिशत से ही बढ़ रही है। इसका मतलब है कि मांग और आपूर्ति में अंतर भी लगातार बढ़ रहा है। देश में बिजली की आपूर्ति बढ़ाने के लिए तरह–तरह के उपाय हो रहे हैं, जिनमें से कोयले, जल और न्यूक्लियर प्लांट से बिजली बनाने के उपाय प्रमुख हैं। बिजली के उत्पादन के

बिजली देश की जीवन रेखा है। इसका ठप होना जनजीवन को प्रभावित तो करता ही है, यह देश के लिए अपमानजनक भी है। ऐसी परिस्थितियों में यह कहा जा रहा है कि चूंकि देश में बिजली की आपूर्ति आवश्यकता से कम है, इसलिए इस प्रकार की घटनाएं दोबारा कभी भी हो सकती हैं।

साथ जुड़े हुए पर्यावरण के विषय हैं। यदि जल से बिजली बनानी हो तो नदियों के प्राकृतिक प्रवाह में खलल पड़ता है।

पिछले कुछ समय से गंगा पर अवरोध खड़े करते हुए बिजली बनाने की कवायद पर लगातार विरोध हो रहा है और हाल ही में पर्यावरणविदों के तर्कों के आधार पर इनमें से कुछ विकल्पों पर प्रतिबंध भी लगाया गया। कोयले या तेल से बिजली बनाने पर दूषित गैसें निकलती हैं, जो मानव जीवन के लिए खतरनाक है। जापान में आए भूकंप के कारण न्यूक्लियर संयंत्रों में हुए रिसाव का हवाला देते हुए देश में न्यूक्लियर पॉवर प्लांट लगाए जाने का विरोध किया जा रहा है। महाराष्ट्र और तमिलनाडु में न्यूक्लियर पॉवर प्लांट को लेकर बड़े पैमाने पर विरोध से सभी वाकिफ हैं। ऐसे सभी विरोधों में ठोस तर्क भी हैं।

क्या कुछ यूनिट बिजली प्राप्त करने के लिए हम गंगा की पवित्रता की बलि दे सकते हैं? क्या न्यूक्लियर ऊर्जा प्राप्त करने के लिए रेडियोधर्मिता के खतरों को ओढ़ सकते हैं? ऐसे कुछ सवाल देश के सामने खड़े हैं। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि बिजली की मांग कितनी है? वास्तव में यह जानना जरूरी है कि बिजली का उपभोग किस काम के लिए और किसके द्वारा ज्यादा हो रहा है। बिजली की 35 प्रतिशत मांग उद्योग, 21 प्रतिशत मांग कृषि, 28 प्रतिशत मांग घरेलू उपयोग और करीब 9 प्रतिशत मांग व्यावसायिक कार्यों के लिए होती है। बड़े उद्योग और व्यवसाय समूह खुद भी अपनी आवश्यकता के लिए अपने पॉवर प्लांट लगाकर बिजली का उत्पादन करते हैं।

गौरतलब है कि बिजली का उपयोग कृषि उद्योग और सेवा क्षेत्र जैसे उत्पादक कार्यों के लिए महज 2.7 प्रतिशत की दर से ही बढ़ रहा है, जबकि गैरउत्पादक कार्यों मसलन, अमीरों की विलासिता (एयर कंडीशनर आदि) के लिए बिजली का उपभोग कहीं ज्यादा गति से बढ़ रहा है। इसके चलते कुल उपभोग की वृद्धि दर लगभग 8 प्रतिशत की है। सरकारी बयानों के अनुसार विभिन्न राज्यों द्वारा नेशनल ग्रिड से बिजली की निकासी उनके कोटे से कहीं ज्यादा हो रही थी। मसलन, हरियाणा अपने तयशुदा कोटे से 18 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश 31 प्रतिशत और राजस्थान 18 प्रतिशत ज्यादा बिजली ले रहे थे। 29–30 जुलाई की रात हरियाणा द्वारा 25.5 प्रतिशत अतिरिक्त बिजली की निकासी हो रही थी। बताया जा रहा है कि इसी के चलते उत्तरी ग्रिड फेल हुई। ताकतवर राज्यों द्वारा अपने कोटे से ज्यादा बिजली की निकासी का यह पहला मामला नहीं है।

बहरहाल, इसमें कोई दो राय नहीं कि विलासिता के लिए बिजली का लगातार बढ़ता उपभोग भी इस संकट के लिए जिम्मेदार है। भारी पड़ती विलासिता आज देश में लगभग 7 हजार करोड़ यूनिट बिजली का उत्पादन प्रतिमाह होता है। इसके चलते प्रति व्यक्ति बिजली का उपभोग लगभग 58 यूनिट मासिक है। देश में अभी लगभग 18 करोड़ लोग (करीब चार करोड़ गृहस्थ) बिजली की सुविधा से वंचित हैं। इनके परिवार को एक बल्ब और एक पंखा भी नसीब हो जाए तो गनीमत हैं। ऐसे में कुल अतिरिक्त बिजली की जरूरत 120 करोड़ यूनिट की ही होगी। ऐसे में अगर 7 हजार करोड़ यूनिट बिजली में से मात्र दो प्रतिशत से भी कम बिजली इस वंचित वर्ग को मिल जाए तो पूरे देश में सबको बिजली की सुविधा उपलब्ध हो जाएगी।

इसका मतलब यह है कि हमारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना में जो एक लाख मेगावाट अतिरिक्त बिजली उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है, वह गरीबों और वंचितों के लिए तो कतई नहीं है। हर बार बिजली का बढ़ता उत्पादन उन लोगों के ही काम आता है, जो इसे खरीदने की क्षमता रखते हैं। इसलिए जब बिजली उत्पादन के लिए किसी भी हद तक प्रकृति के शोषण की बात आती है, चाहे नदियों पर बांध बनाकर या रेडियोधर्मिता के खतरे से लैस आणविक ऊर्जा संयंत्र लगाकर अथवा दूषित गैसों के विसर्जन के खतरे के साथ कोयले या गैस से बिजली बनाकर तो वह इस देश के आम आदमी के लिए नहीं है, बल्कि बिजली संकट को दूर करने के बहाने यह अमीरों को विलासिता के संसाधान मुहैया कराने के लिए है।

यह सही है कि पिछले कुछ दिनों में ग्रिड के फेल हो जाने से देश की छवि को धक्का लगा है, लेकिन हमें विचार करना होगा कि यह स्थिति इसलिए उत्पन्न हुई है, क्योंकि हम बिजली का उपभोग हद से ज्यादा कर रहे हैं। जैसे–जैसे अमीरों की विलासिता बढ़ रही है, वैसे–वैसे बिजली संकट बढ़ता जा रहा है। ऐसे में आने वाले समय में पर्यावरणीय संकटों से देश को बचाना मुश्किल होगा। ऐसे में कुछ लोग जो अंक गणितीय तरीके से मांग के अनुसार बिजली के उत्पादन को बढ़ाने के लिए निवेश बढ़ाने की बात कर रहे हैं, उन्हें यह समझना होगा कि बिजली उत्पादन की प्राकृतिक सीमाएं हैं।

बिजली संकट की यह स्थिति न आए, इसके के लिए सरकार को सौर ऊर्जा जैसे विकल्पों पर ध्यान देना होगा। कभी खत्म न होने वाले इस विकल्प को अपनाने के लिए लोगों को न सिर्फ प्रोत्साहित करना होगा, बल्कि अनुदान भी देना होगा। □

खाद संकट - भंवर में फंसा किसान

पूरी दुनिया में खाद की खपत के अनुपात में कृषि उपज नहीं बढ़ रही है, जिससे हमारे खेती के तरीके पर ही सवाल उठता है। सरकार किसानों को जैविक अपनाने की बात तो कहती है लेकिन किसी तरह का प्रोत्साहन देने से बचती है। सरकार की उदासीनता का पता इस बात से ही चलता है कि जैविक खेती से तैयार फसल का बीमा भी नहीं होता है। रसायनिक उर्वरकों के स्रोत सीमित हैं और समय के साथ–साथ खत्म हो जाएंगे, इसलिए आवश्यक है कि अभी से इनके विकल्पों पर ध्यान दिया जाए।

■ **नरेश सिरोही**

कुछ समय पहले खबर आई थी की दुनिया में सात अरबवां बच्चा पैदा हो गया है। कई देशों में इस सात अरबवें बच्चे का श्रेय लेने की होड़ मची और इसमें भारत भी पीछे नहीं था। हालांकि कुछ लोगो ने इन सात अरब लोगो के पेट भरने पर भी चिंता जाहिर की, लेकिन खाद्य उत्पादन कैसे बढ़ेगा इसपर कोई ठोस बात सामने नहीं आई।

अब हमारे देश में खेती का क्या हाल है आइए इस पर नजर डाल लें। हमारे देश में कुल 19.5 करोड़ हैक्टर भूमि पर खेती की जाती है, इसमें करीब 83 फीसदी छोटे और सीमांत किसान हैं, यानी दो हैक्टर से भी कम जोत वाले। भारत का आधे से ज्यादा श्रमबल खेती में लगा है और अन्य क्षेत्र की वृद्धि और हमारी पूरी अर्थव्यवस्था ही काफी हद तक खेती के प्रदर्शन पर निर्भर है। लेकिन अच्छे उत्पादन के लिए किसानों को सही समय और सही मात्रा में खाद उपलब्ध कराना बेहद आवश्यक है। लेकिन पिछले रबी सीजन में भी देखा गया कि कई राज्यों में बुआई शुरू हो जाने के बावजूद पोटाश, डीएपी यानी डायअमोनियम फास्फेट और नाइट्रोजन यानी यूरिया की किल्लत बरकरार थी, जबकि मौजूदा खरीफ में कम बारिश और रसायनिक उर्वरकों के बढ़ें दामों के कारण किसान के लिए उसे खरीदना मुश्किल हो रहा है। लेकिन क्या अधिक खाद का मतलब अधिक उत्पादन ही है? असल में कृभकों के आंकड़े ही बताते हैं कि उर्वरक खपत में वृद्धि के अनुरूप फसल उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई है। फसल उत्पादन अनुपात 1970 में 13.4 से घटकर 2010 में लगभग 3.7 हो गया है, यानी अधिक उर्वरक डालने के बावजूद उत्पादन उस अनुपात में नहीं बढ़ पा रहा है।

इससे ये तो साबित ही होता है कि हमारी अवधारणा गलत है कि, जितना उर्वरक डालें उतना ही उत्पादन बढ़ेगा साथ ही ये भी पता चलता है कि एनपीके खाद ही उत्पादन बढ़ाने में मदद नहीं करती बल्कि सूक्ष्म तत्व और जैविक तत्वों की भी अहम भूमिका है, जिसे अब नकारा नहीं जा सकता।

देश में रसायनिक खाद बनाने के करीब 141 संयंत्र हैं और करीब एक करोड़ 67 लाख टन सामग्री आयात की जाती है। देश में रसायनिक खाद की खपत करीब पांच करोड़ 33 लाख टन है और उत्पादन तीन करोड़ 72 लाख टन है। यानी बाहर से मंगवाना हमारी मजबूरी है क्योंकि बिना रसायनिक खाद के हमारी जमीन पैदावार बहुत कम देती है, जिसका कारण है कि जमीन में नैसर्गिक रूप से पोषक तत्व जुटा लेने की क्षमता खत्म होती जा रही है और वे रसायनिक खाद आदी होती जा रही है, बिल्कुल एक नशेड़ी की तरह। हमारे खेतों की मिट्टी में करीब 89 फीसदी नाइट्रोजन की कमी है वैसे तो पूरी दुनिया की मिट्टी में ही नाइट्रोजन की कमी है क्योंकि नाइट्रोजन बहुत जल्द मिट्टी में से उड़कर पर्यावरण में घुल जाती है, इसके अलावा देश में लिए गए मिट्टी के सैंपलों में फास्फोरस करीब 80 फीसदी तक कम है, पोटेशियम 50 फीसदी सैंपलों में कम पाया गया है, सल्फर लगभग 40 फीसदी कम है, जस्ते की कमी करीब 48 फीसदी है, बोरॉन 33 फीसदी कम, लौह तत्व लगभग 12 फीसदी कम है और मैग्नीज़ करीब पांच

फीसदी कम है।

ऊपर दिए गए आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे खेतों में पोषक तत्वों की मात्रा तेजी से घट रही है, जिसका कारण 70 के दशक में शुरू की गई गहन कृषि है, जो शायद तब जरुरी भी थी और इसलिए हमारी खेती अब लगभग पूरी तरह रसायनिक खाद पर निर्भर है।

केंद्र सरकार ने रसायनिक खाद के लिए कई नीतियां बनाई हैं, लेकिन कोई भी नीति किसान को लाभ देने में नाकामयाब रही है। सरकार रसायनिक खाद पर से सब्सिडी हटाती है तो कंपनियां दाम बढ़ा देती है। अब पोषक तत्वों पर आधारित सब्सिडी दी जाती है इसे एनबीएस कहते हैं यानी न्यूट्रिएन्ट बेस्ड सब्सिडी। यह एनबीएस डाइअमोनियम फॉस्फेट यानी डीएपी, म्यूरेट ऑफ पोटाश यानी एमओपी, मोनोअमोनियम फॉस्फेट यानी एमएपी, ट्रिपल सुपर फॉस्फेट यानी टीएसपी, सिंगल सुपर फॉस्फेट यानी एसएसपी और 13 अन्य रसायनिक खाद पर लागू है। यह सब्सिडी भी उद्योग के जरिए ही दी जाएगी, हालांकि सरकार ने कहा है कि अब सब्सिडी सीधे किसानों को दी जाएगी, दुकानदारों के जरिए, पर कैसे, यह अभी स्पष्ट नहीं हैं और पहले वाली व्यवस्था जारी है। नाईट्रोजन पर प्रति किलोग्राम 27.48 रुपये एनबीएस दी जाती है, फोस्फोरस पर 29.40 रुपये सब्सिडी, पोटेशियम पर 24.62 रुपये और सल्फर पर 1.69 रुपये प्रति किलोग्राम सब्सिडी दी जाती है। यूरिया के दाम सरकार तय करती है जबकि बाकियों के दाम कारोबारी तय करते हैं।

भारत यूरिया और डीएपी का सबसे बड़ा आयातक है और पोटाश यानी म्यूरेट ऑफ पोटाश एमओपी का दुनिया में दूसरे नंबर का आयातक है। हाल ही में अमेरिका की एक फर्म दी मिनिसोटा ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि भारत में फोस्फेट आधारित रसायनिक खाद की खपत में पांच फीसदी की वृद्धि होगी। रिपोर्ट के अनुसार अनाज के लेकर तिलहनी फसलों से फल और सब्जी एवं अन्य कृषि उत्पादों के दाम काफी ऊंचे स्तर पर है जिस कारण दुनियाभर के किसान अधिक से अधिक कृषि उत्पादन में लगे हैं और इसी कारण रसायनिक खाद की खपत बढ़ रही है।

वैश्विक स्तर पर ही रसायनिक खाद की समस्या बनी हुई है और ऐसे में एनबीसी के बहाने सब्सिडी में कमी होने के कारण रसायनिक खाद उद्योग अपनी नुकसान की बात करके दाम बढ़ाने पर तुला है। इस कारण कई कंपनियों ने अपने प्राइस कंट्रोल के बाहर वाली रसायनिक खाद के दाम बढ़ा दिए हैं। यानी एनबीसी से किसानों को लाभ कम नुकसान अधिक हो रहा है।

अब यह तो सब जानते ही हैं कि जब भी भारत में नया बुआई सीज़न चालू होता है तभी अंतरराष्ट्रीय बाजारों में रसायनिक खाद के दाम बढ़ जाते हैं और जहां भारत कृषि उत्पादों की खरीद की बात करता है तो भी अंतरराष्ट्रीय बाजारों में कृषि उत्पादों के दाम आसमान छूने लगते हैं। अब सवाल यह उठता है कि सरकार की नीति इन अंतरराष्ट्रीय बाजारों के उतार–चढ़ावों से निपटने के लिए क्या रही है?

पिछले रबी सीजन में सबसे बड़ी किल्लत डीएपी की थी और साथ ही एमओपी की भी अंतरराष्ट्रीय बाजार में कमी बनी रही। राज्य सभा में एक सवाल के जवाब में रसायनिक खाद राज्य मंत्री श्रीकांत कुमार जेना ने कहा कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में एमओपी उपलब्धता में कमी है।

रबी सीजन के दौरान फॉस्फेट उर्वरकों जैसे डीएपी की किल्लत से किसानों को दो–चार होना पड़ा था और खरीफ में भी उर्वरकों की कमी तो नहीं कह सकते लेकिन गैर–यूरिया खाद के दामों में करीब 63 फीसदी की बढ़ोतरी की गई है और बारिश का हाल हम सब जानते ही हैं। उर्वरक मंत्रालय के अनुसार रबी सीजन के लिए 20 लाख टन उर्वरक स्टॉक के तौर पर रखा गया था लेकिन उसे खरीफ सीजन के दौरान ही किसानों को उपलब्ध करा दिया गया था जिससे आपूर्ति कम पड़ गई थी। मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी ने पिछले रबी सीजन में कहा था कि डीएपी की किल्लत को सिंगल सुपर फॉस्फेट यानी एसएसपी के द्वारा पूरा करने की कोशिश की जा रही है, जबकि कमी बरकरार रही। आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार बीते वर्ष के 32.19 लाख टन के मुकाबले 2011–12 के रबी सीजन में 30 लाख टन डीएपी ही उपलब्ध थी। इसी अवधि में यूरिया की मांग और आपूर्ति के बीच 12–13 लाख टन का अंतर था।

अब यह तो सब जानते ही हैं कि जब भी भारत में नया बुआई सीज़न चालू होता है तभी अंतरराष्ट्रीय बाजारों में रसायनिक खाद के दाम बढ़ जाते हैं और जहां भारत कृषि उत्पादों की खरीद की बात करता है तो भी अंतरराष्ट्रीय बाजारों में कृषि उत्पादों के दाम आसमान छूने लगते हैं। अब सवाल यह उठता है कि सरकार की नीति इन अंतरराष्ट्रीय बाजारों के उतार–चढ़ावों से निपटने के लिए क्या रही है? कहने को सरकार किसान की हिमायती बनती है,

लेकिन इतने वर्षों में किसान को सरकार सही रसायनिक खाद, सही बीज, सही कीटनाशी और सस्ते कृषि उपकरण ही उपलब्ध नहीं करा पाई है। सरकार की हर नीति उद्योग के लाभ को ध्यान में रखकर ही बनाई जाती है।

पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश से लेकर लगभग सभी राज्यों में रसायनिक खाद की किल्लत बरकरार है, जबकि मौजूदा खरीफ मौसम में बुवाई पिछड़ गई है या फिर खेत ही खाली पड़े हैं। हालांकि पिछले रबी सीजन में तापमान अधिक होने के कारण किसान वैसे ही गेंहू और अन्य रबी की फसलों की बुआई देरी से शुरू की थी और इसबार खरीफ में भी बारिश में देरी और कमी के कारण बुवाई फिर पिछड़ रही है। इससे उत्पादन में तो फर्क पड़ेगा ही साथ ही साथ किसान की आमदनी भी घटेगी।

पिछले रबी सीजन में बाजार में लगभग सभी प्रकार की रसायनिक खादों को ब्लैक किया गया था और इस कारण भी खेती की लागत में इजाफा हुआ। पहले से ही बदहाल किसानों को बगैर कोई विकल्प दिए, खाद से सब्सिडी हटा लेना कहां की किसान हितैषी नीति है? किसान को कर्ज के मौजूदा दलदल से निकालने के लिए सरकार के पास कोई कारगर उपाय नहीं हैं उल्टे सरकार की हर नीति किसान विरोधी बनती जा रही है। हाल ही में सरकार ने खरीफ फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में करीब 15 से 52 फीसदी की बढ़ोतरी की, जिसे लेकर काफी बहस छिड़ी और कई अखबारों ने तो इससे खाद्य वस्तुओं के दाम और बढ़ने की बात तक कह दी। पर किसी ने नहीं सोचा कि गैर–यूरिया उर्वरकों के दामों में करीब 63 फीसदी की वृद्धि की जा चुकी है और अन्य लागत भी बढ़ ही रही हैं।

उर्वरक, कीटनाशी आदि की बात करने से पहले एक तथ्य पर गौर करना आवश्यक है। वे है कि उदारवाद या कहे बाजारवाद को अपनाने के बाद हमारे देश में खाद और कीटनाशियों की स्थिति में क्या फर्क आया?

जब भारत ने 1991 में आईएमएफ यानी अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से पैसा लिया तो कई शर्ते थोपीं गई और रुपये की कीमतों में 25 फीसदी की तुरंत गिरावट दर्ज की गई। रुपये की कीमत कम होने से अंतरराष्ट्रीय बाजार में भारतीय फसलें काफी सस्ती हो गई, जिनकी ओर सभी आकर्षित हुए और निर्यात में वृद्धि हुई। किसानों को भी आयात के लिए उपयुक्त फसलें जैसे मिर्च, कपास और तंबाकू आदि लगाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इन फसलों में पारंपरिक फसलों की तुलना में अधिक कीटनाशी, उर्वरक और पानी की जरुरत होने लगी।

आईएमएफ की शर्तों के अनुसार सन् 2000 तक कीटनाशियों पर दी जाने वाली सब्सिडी में दो–तिहाई की कमी करने का हुक्म दिया गया था। अब इसका नतीजा क्या हुआ, महाराष्ट्र का जो किसान 90 रुपये प्रति एकड़ खर्च करता था अब 1,000 से 3,000 रुपये खर्च करता है। यानी आईएमएफ की मानने से कीटनाशियों के दामों में 1000 से 3333 फीसदी तक का इजाफा हुआ। उर्वरकों में यह इजाफा 2005 तक करीब 300 फीसदी था जो अब बढ़कर करीब 500 फीसदी पहुंच गया है। इसी तरह बिजली के दामों में 1998 और 2003 के दौरान करीब पांच गुना इजाफा हुआ। इन सब कारणों से किसान की लागत बढ़ती गई और फसल महंगी होती चली गई।

हमारे किसानों को देश की तरक्की के नाम पर बलि चढ़ाया गया। देश में कुल आत्महत्याओं में 12 फीसदी आत्महत्याएं किसान करते हैं, जो एक उदार आंकड़ा है क्योंकि आत्महत्याओं में उन्हें ही किसान माना जाता है जिनके नाम जमीन हो, जबकि अधिकतर किसान अब भूमिहीन मजदूर है और महिलाएं हैं जिनके मरने का आंकड़ा किसान आत्महत्याओं में शामिल नहीं होता। आजादी के बाद किसान की सबसे अधिक दुर्दशा आज है। हालांकि किसान की हालत खराब होती गई लेकिन कंपनियों की हालत बेहद अच्छी चल रही है।

यानी हमारे किसानों को देश की तरक्की के नाम पर बलि चढ़ाया गया। देश में कुल आत्महत्याओं में 12 फीसदी आत्महत्याएं किसान करते हैं, जो एक उदार आंकड़ा है क्योंकि आत्महत्याओं में उन्हें ही किसान माना जाता है जिनके नाम जमीन हो, जबकि अधिकतर किसान अब भूमिहीन मजदूर है और महिलाएं हैं जिनके मरने का आंकड़ा किसान आत्महत्याओं में शामिल नहीं होता। आजादी के बाद किसान की सबसे अधिक दुर्दशा आज है। हालांकि किसान की हालत खराब होती गई लेकिन कंपनियों की हालत बेहद अच्छी चल रही है।

देश और दुनिया के कई भागों में कम बारिश हो रही है और सूखे जैसे हालात हैं, ऐसे में डीएपी यानी डाई–एमोनियम फास्फेट और पोटाश के दामों में कमी आनी

शुरू हो गई है। कुछ ही महीनों में यूरिया के दाम 525 डॉलर प्रति टन के दाम से गिरकर 406 डॉलर प्रति टन पर आ गए है। कुल मिलाकर उर्वरकों की मांग में करीब 50 फीसदी की कमी दर्ज की जा रही है। डीएपी के दामों में पिछले सीजन में करीब दोगुना इजाफा हुआ था। पिछले खरीफ सीजन में डीएपी के दाम 12,000 रुपये प्रति टन से बढ़कर 18,000 रुपये प्रति टन हो गए थे जो इसबार खरीफ सीजन की शुरूआत पर ही बढ़कर 24,000 रुपये प्रति टन हो गए थे, जिस कारण किसान इसे खरीदने से बच रहा है। अब देखा जाए तो यूरिया, डीएपी की तुलना में 80 फीसदी कम दाम पर बिक रहा है। अब किसान तो सोचता है कि यूरिया डालने से काम चल जाएगा और वो यूरिया ही खरीद रहा है। ये भी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् और उसके कृषि विज्ञान केंद्रों की नाकामयाबी है कि अभी किसान मिट्टी में पोषण और सूक्ष्म तत्वों के महत्व को नहीं समझ पाया है। हालांकि पहले किसान इन बातों को जानता था और फसल चक्र व जैविक खाद के जरिए मिट्टी की जरुरतों को पूरा करता था, लेकिन अब धीरे–धीरे पारंपरिक ज्ञान भी पारंपरिक बीजो की तरह लुप्त होता जा रहा है।

अगर हम खाद संकट से किसान को निकालने की बात करें तो ऐसा समाधान ढूंढ़ना होगा जो टिकाऊ हो। पूरी दुनिया में भारतीय प्राचीन कृषि पद्वति जिस आज जैविक खेती कहतें है, तेजी से लोकप्रिय हो रही है। जैविक खेती के लिए पशुपालन बेहद आवश्यक है। गोबर खाद या केंचुआ खाद या कूड़ा–करकट से खाद बनाकर और उसे खेत में डालकर हम मुख्य पोषक तत्वों की कमी तो पूरा करते ही हैं साथ में सूक्ष्म पोषक तत्व और जैविक पदार्थ को भी खेतों में पहुंचाते हैं। देश में मौजूदा 25 करोड़ मवेशी सिर्फ दूध देने के लिए ही नहीं है, बल्कि खाद की फैक्टरी भी हैं। जिस कूड़ा–करकट को सड़ाकर हम करीब 90 दिनों में खाद तैयार करतें हैं, गाय भैंस तो सिर्फ 24 घंटे में हमें दे देते हैं। अगर गोबर से गोबर गैस बनाई जाए और उस गैस से जनरेटर चालाएं जाए, ऐसा हो रहा है, तो गावों में बिजली की समस्या का भी समाधान होगा, पर्यावरण सुरक्षित होगा और गोबर गैस संयंत्र से निकलने वाली स्लरी खेतों के लिए बेहतरीन खाद का काम करेगी। आवश्यक है कि सरकार शहरी और अन्य कचरों से खाद तैयार करे और उसे किसान को उपलब्ध कराए, साथ ही फसल चक्र में हरी खाद की अहमियत को समझते हुए इसे पैकेज और प्रैक्टिसेज का हिस्सा बनाए। जैविक खाद जैसे केंचुआ खाद, जीवाणु खाद, हरित–नील शैवाल खाद (एक प्रकार की काई) आदि को अपनाना अब आवश्यक भी है और साथ ही हरी खाद व अन्य जैविक उपायों से मिट्टी में पोषक तत्व तो पहुचतें ही हैं, बल्कि मिट्टी की नमी धारण करने की क्षमता भी बढ़ती है जिसकी आज के समय सबसे अधिक आवश्यकता है।

पूरी दुनिया में खाद की खपत के अनुपात में कृषि उपज नहीं बढ़ रही है, जिससे हमारे खेती के तरीके पर ही सवाल उठता है। सरकार किसानों को जैविक अपनाने की बात तो कहती है लेकिन किसी तरह का प्रोत्साहन देने से बचती है। सरकार की उदासीनता का पता इस बात से ही चलता है कि जैविक खेती से तैयार फसल का बीमा भी नहीं होता है।

ऐसा नहीं है कि जैविक खाद बनाने का काम बेहद बड़े स्तर पर नहीं किया जा सकता। दिल्ली स्थित पूसा संस्थान ने ही बहुत बड़ा जैविक खाद बनाने का संयंत्र लगा रखा है, जिससे उसकी आमदनी भी अच्छी हो रही है। सभी रसायनिक उर्वरकों के स्रोत सीमित हैं और आज नहीं तो कल खत्म हो जाएंगे, तब हमें जैविक की ओर मुड़ना ही होगा, तो अभी पहल करके पर्यावरण बचाना समझदारी ही नजर आती है। हां एक बात और, देश में कई किसानों के साथ कृषि वैज्ञानिको का भी मानना है कि जैविक खेती से उत्पादन गिरता है। हाल में भारत ने प्रति एकड़ चावल उत्पादन और आलू उत्पादन का विश्व रिकॉर्ड बिहार में बनाया है और दोनो ही के उत्पादन के लिए पूरी तरह जैविक खेती ही की गई थी।

पूरी दुनिया में खाद की खपत के अनुपात में कृषि उपज नहीं बढ़ रही है, जिससे हमारे खेती के तरीके पर ही सवाल उठता है। सरकार किसानों को जैविक अपनाने की बात तो कहती है लेकिन किसी तरह का प्रोत्साहन देने से बचती है। सरकार की उदासीनता का पता इस बात से ही चलता है कि जैविक खेती से तैयार फसल का बीमा भी नहीं होता है। रसायनिक उर्वरकों के स्रोत सीमित हैं और समय के साथ–साथ खत्म हो जाएंगे, इसलिए आवश्यक है कि अभी से इनके विकल्पों पर ध्यान दिया जाए। साथ ही रसायनिक खाद के दाम बेहताशा बढ़ रहे हैं और किसान को उसकी उपज के उचित दाम नहीं मिल रहे हैं, ऐसे में किसान की हालत बद से बदतर होती जा रही है। बुआई के समय रसायनिक खाद उपलब्ध न होना एक गंभीर अपराध है और इस अपराध के लिए जिम्मेवार सरकार को क्या हम ऐसे ही माफ करते रहेंगे? □

''किसान जमावड़ा''

22–23 अगस्त, 2012, नई दिल्ली

■ **दीपक शर्मा 'प्रदीप'**

देश के कृषि मंत्री संसद में यह स्वीकार कर चुके हैं कि लगभग 2.5 लाख किसान अपनी आर्थिक दुर्दशा के चलते आत्महत्या कर चुके हैं। करोड़ों किसान अपना गांव और खेती छोड़कर महानगरों की स्लम बस्तियों में नारकीय जीवन जीने को मजबूर हैं। किसान को बीज, खाद, कीटनाशक, ट्रैक्टर आदि बेचने वाली तथा किसान की फसल खरीदने वाली कंपनियां तो अमीर हो रही हैं किन्तु किसान गरीब हो रहा है। कहीं किसानों पर लाठी चल रही है तो कहीं पर गोली। बार–बार किसानों को हाईवे पर या रेल की पटरी पर बैठना पड़ रहा है। बाजार की ताकतों के सामने सरकारें भी लाचार होने लगी हैं।

देश में तेजी से देश में बढ़ रहे इस असंतोष को सम्य समाज में क्या अनदेखा किया जा सकता है?

पहले से ही पिस रहे किसान के ताबूत में संसद में प्रस्तुत राष्ट्रीय जल नीति 2012 के द्वारा आखिरी कील ठोकने की तैयारी कर ली गई है। ब्राजील के एक नगर रियो–डी–जिनेरियो में दिनांक 13 जून से 22 जून 2012 तक आयोजित की गई संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठक (रियो + 20) से ऐन पहले विकसित देशों के इशारे पर संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से United Nations Conference on Sustainable Development के द्वारा 909 पृष्ठ की रिपोर्ट प्रकाशित की गई, जिसका शीर्षक है – United Nations Worlds Water Development Report 4: Managing Water Under Uncertainity and risk. इस बैठक में भारत के प्रधानमंत्री सहित 100 देशों के राष्ट्राध्यक्ष अथवा उनके प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रकाशित इस रिपोर्ट एवं भारत सरकार की प्रस्तावित राष्ट्रीय जल नीति 2012 (जोकि जल मंत्रालय की वेबसाइट http://wrmin.nic.in पर उपलब्ध है) को ध्यान से देखें तो एक बात स्पष्ट रूप से उभरकर आ रही है कि **'जल'** (बरसने वाला, बहने वाला एवं भूमिगत) का निजीकरण करके बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हवाले कर 20 खरब डॉलर (1 खरब डॉलर – 57,000 करोड रूपये) का नया उभरता हुआ व्यापार (Sunrise area of Business) बनाने की योजना है। 10 राज्यों के 245 जिलों में इन कंपनियों ने MoU भी हस्ताक्षर करवा लिए है।

यह नीति जनता से सुझाव मांगने के लिए 31 जनवरी 2012 को वेबसाइट पर तकनीकी अंग्रेजी भाषा में डाली गई तथा जनता की ओर से सुझाव एवं आपत्तियां दर्ज कराने की तारीख 29 फरवरी 2012 तक रखी गई। हैरानी की बात यह है कि यह सब इतनी चतुराई से किया गया कि अधिकांश जनता को पता ही नही चला।

इस नीति के अनुच्छेद क्रमांक 7.1 में कहा गया है कि जल को **आर्थिक वस्तु** माना जाए। ऐसा मानते ही जल को व्यापार (लागत एवं पूर्ण मुनाफा) के रूप में कंपनियों के हवाले करने का रास्ता खुल जाता है।

दूसरी चौंकाने वाली बात अनुच्छेद क्रमांक 2.2 में कही गयी है। अभी तक **''भारतीय सुखाधिकार अधिनियम 1882''** के कारण किसान को अपने खेत व गृह स्वामी को अपने मकान के नीचे के जल का मालिकाना अधिकार मिला हुआ है। इसी के कारण वह अपनी बोरिंग पर केवल बिजली का मीटर ही लगाता है, पानी का मीटर नहीं लगाता। इस अनुच्छेद में इस अधिकार को समाप्त करने की बात कही गई है। ताकि कंपनियों का जल बिक सके। ऐसे में किसान की तो कमर ही टूट जायेगी।

इसी प्रकार अनुच्छेद 7.2, 7.4, 7.5, 13.1, 13.4 में अनेक बातें इस प्रकार से कही गई हैं कि सृष्टि एवं मानवता को प्रकृति के इस अमूल्य एवं निःशुल्क उपहार का व्यापार बनाया जा सके। विश्व में यूरोप और अमरीका की **स्वेज, बेक्टेल, डेग्रमाण्ड** आदि 10–12 ही बड़ी जल कंपनियां हैं तथा उनकी नजर इस व्यापार पर लगी हुई है। विश्व बैंक ने भी बड़ी चतुराई से जल के संबंध में Civic Infrastructure शब्द का प्रयोग प्रारंभ कर दिया है।

देश की जनता के (टेक्स) हजारों

करोड़ की लागत से बने हुए हमारे बांध, नहरें आदि सब इस कंपनियों के प्लांट को जल देने के लिए मजबूर हो रहे हैं। ये कंपनियां 10 से लेकर 30 वर्ष तक के अनुबंध कर रही हैं तथा सरकार से निश्चित मुनाफे की गारंटी का वचन भी ले रही है। मात्र 2–4 हजार करोड़ रूपये लगाकर (वह भी यहीं के बैंकों से लोन लेकर) ये कंपनियां भारत के पानी को भारत के ही खेतों और लोगों को पिलाकर मुनाफे की मलाई अपने देश ले जायेंगी।

जिस दिन (22 जून 2012) भारत के प्रधानमंत्री रियो–डी–जिनेरियो की बैठक में भाषण दे रहे थे, उसी दिन उत्तराखण्ड में जल के संबंध में संघर्ष कर रहे प्रो. जी. डी. अग्रवाल 'स्वामी सानंद' (आई.आई.टी. रूड़की के प्रोफेसर), मेगासेसे पुरस्कार विजेता जल पुरूष श्री राजेन्द्र सिंह सहित अनेक आंदोलनकारियों को विदेशी कंपनियों के गुर्गों ने 19 किमी. तक खदेड़कर भगाया।

इसी प्रकार कृषि योग्य भूमि का कंपनियों के द्वारा अधिग्रहण कर गांव के गांवों का विस्थापन करने के मामले सामने आ रहे हैं। अपने–अपने स्थानों पर लोग आंदोलन कर रहे हैं। भट्टा पारसोल, नंदीग्राम, सिंगूर, वेदांत कंपनी (उड़ीसा) आदि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

इन सभी बातों के आलोक में संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठक प्रारंभ होने से एक दिन पहले दिनांक 12 जून को मंच के नई दिल्ली स्थित केंद्रीय कार्यालय में देश के प्रमुख किसान संगठनों की एक बैठक आयोजित की गई।

इस बैठक में स्वदेशी आंदोलन के प्रखर एवं युवा नेता श्री मुरलीधर राव, भारतीय किसान संघ के संगठन महामंत्री श्री प्रभाकर केलकर, भारतीय किसान यूनियन के प्रवक्ता श्री युद्ववीर सिंह, भारतीय कृषक समाज के अध्यक्ष डॉ. कृष्णबीर चौधरी, भारतीय जनता किसान मोर्चा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री ओमप्रकाश धनखड़ एवं राष्ट्रीय महामंत्री श्री नरेश सिरोही, पूर्व केंद्रीय मंत्री श्री सतपाल मलिक, विश्व विख्यात कृषि वैज्ञानिक डॉ. देवेन्द्र शर्मा, किसान महापंचायत के अध्यक्ष श्री रामपाल जाट, खेती विरासत मिशन के अध्यक्ष श्री उमेन्द्र दत्त, मंच के कृषि प्रकोष्ठ प्रमुख श्री भगीरथ चौधरी, डॉ. महेश चन्द्र शर्मा (पूर्व सांसद), मंच के अ. भा. सह–संयोजक श्री सरोज मित्र सहित 45 किसान नेता उपस्थित थे। मंच के अखिल भारतीय संगठक श्री कशमीरी लाल ने बैठक की अध्यक्षता की।

5 घंटे चली इस बैठक में सभी नेताओं ने अपने विचार रखते हुए एकमत से यह सहमति व्यक्त करी कि खेती से जुड़े मुद्दों पर देश भर में काम कर रहे अथवा संघर्ष कर रहे महानुभावों को 2 दिन के लिए एक साथ बैठना चाहिए। **इस बैठक में परस्पर चर्चा–सहमति–यदि संभव हो तो सांझा रणनीति बनाने का प्रयास किया जाए। चूंकि विदेशी कंपनियों का खतरा बहुत बड़ा है और सामने आकर खड़ा हो गया है। अतः हम सब अपने–अपने संगठनों में काम करते हुए अपने स्टेंड पर अटल रहें। साथ–ही–साथ कुछ मुद्दों पर मुद्दा आधारित एकजुटता बनाते हुए कृषि से संबंधित महानुभावों को एकसूत्र में पिरोने का प्रयास ही इस कार्यक्रम का उद्देश्य है।** तदानुसार दिनांक **22, 23 अगस्त 2012 को दिल्ली में ''किसान जमावड़ा''** के नाम से यह कार्यक्रम निश्चित किया गया है।

बैठक में यह भी निर्णय लिया गया कि इस कार्यक्रम में देशभर के सभी प्रमुख किसान नेता, कृषि से जुड़े हुए बुद्विजीवी एवं अर्थशास्त्री, भूमि अधिग्रहण एवं जल आदि मुद्दों पर संघर्ष कर रहे व्यक्ति अथवा संगठनों को निमंत्रित किया जायेगा। इस निमंत्रण में निष्ठापूर्वक काम कर रहे किसी भी व्यक्ति अथवा संगठन को बुलाने में कोई परहेज नहीं किया जायेगा। चाहे वे किसी भी विचारधारा के हो।

यह कार्यक्रम दिनांक 22 अगस्त को 10.30 बजे प्रारंभ होकर 23 अगस्त 2012

कृषि नहीं तो गांव नहीं। गांव नहीं तो क्या भारत की कल्पना की जा सकती है ? क्या समय आ गया है कि संपूर्ण राजनैतिक व्यवस्था के बारे में विचार करके निर्णयात्मक संघर्ष, देश की मांग है? इसका उत्तर यदि 'हां' है तो इसका घोष एक स्वर में स्वयं किसान को ही करना होगा। अपने मन में विचारों की इसी उथल–पुथल के बीच हम कुछ लोग मिलकर बैठे थे। उसी में से यह 'किसान जमावड़ा' की कल्पना निकली है। हमारा मानना है कि यह एक साझा प्रयोग है। जिस पर दलों एवं विचारधारा से आगे बढ़कर प्रयास किया जाना चाहिए। यह भगीरथी प्रयास सबके सहयोग से ही सफल हो सकेगा।

को सायं 4.00 बजे तक चलेगा।

कार्यक्रम का स्थान निम्नलिखित है :–

अध्यात्म साधना केन्द्र, तेरापंथ भवन (हनुमान जी की विशाल प्रतिमा के सामने), छत्तरपुर, नई दिल्ली–30 (यह स्थान छत्तरपुर मेट्रो स्टेशन के पास ही स्थित है। छत्तरपुर मेट्रो स्टेशन कुतुबमीनार मेट्रो स्टेशन के बाद आता है।)

–:: निवेदक ::–

प्रभाकर केलकर
राष्ट्रीय महासचिव, भारतीय किसान संघ

डॉ. महेशचन्द्र शर्मा (पूर्व सांसद)
एकात्म मानववाद के चिंतक एवं विचारक

युद्धवीर सिंह
राष्ट्रीय महासचिव,
भारतीय किसान यूनियन (टिकैत)

डॉ. भरत झुनझुनवाला
प्रख्यात चिंतक एवं लेखक

सत्यपाल मलिक
राष्ट्रीय प्रभारी, किसान मोर्चा
पूर्व केन्द्रीय मंत्री,

डॉ. वन्दना शिवा
Navdanya/Research Foundation
for Science Technology & Ecology

डॉ. कृष्णबीर चौधरी
अध्यक्ष, भारतीय कृषक समाज

औम प्रकाश धनखड़
अध्यक्ष, भारतीय जनता किसान मोर्चा

बासवराज पाटिल (MP)
राष्ट्रीय संयोजक, भारत विकास संगम
संयोजक, विकास अकादमी (हैदराबाद कर्नाटक)

सुभाष पालेकर
प्रवर्तक, जीरो बजट आध्यात्मिक कृषि शोध,
विकास एवं प्रसार आंदोलन

किशोर तिवारी
अध्यक्ष, विदर्भ जनआंदोलन समिति

जगदीप धनखड़
वरिष्ठ अधिवक्ता, सर्वोच्य न्यायालय
पूर्व केन्द्रीय मंत्री,

Mallanala Venketashewar Rao
Gen. Secy., Telagu Raitu (TDP Wing)

नरेश सिरोही
महासचिव, भारतीय जनता किसान मोर्चा

Varghese Thoduparambil
Chief Organizer, Karshak Munnettam

नरेन्द्र सिंह परमार (Adv)
मातृभूमि रक्षा समिति, गगरेट SEZ

सरयू राय
अध्यक्ष, जल जागरूकता अभियान

रघु यादव
नायक, जल युद्ध

उमा बल्लभ रथ
संयोजक, वेदांत विश्वविद्यालय विरोधी
संघर्ष समिति, पुरी (उड़ीसा)

उमेन्द्र दत्त
अध्यक्ष, खेती विरासत मिशन

भानु प्रताप सिंह
राष्ट्रीय अध्यक्ष, भारतीय किसान यूनियन (भानू)

प्रदीप कुमार शर्मा
संयोजक, छत्तीसगढ़ कृषक बिरादरी

डॉ. एल. नारायण रेड्डी
अध्यक्ष, आचार्य पाराशर जैविक
कृषि गुरुकुल (कर्नाटक)

डॉ. स्वामी नाथ तिवारी
अध्यक्ष, ग्राम गौरव योजना, बिहार

प्रदीप पुरोहित
गंधामर्धन सुरक्षा परिषद् (उड़ीसा)

कृष्ण कुमार जाखड़
अध्यक्ष, खेत खलिहान मोर्चा (राजस्थान)

जय प्रकाश नारायण (IAS)
अध्यक्ष, लोकसत्ता पार्टी **(AP)**

रामपाल जाट
राष्ट्रीय अध्यक्ष, किसान महापंचायत

भगीरथ चौधरी
राष्ट्रीय संयोजक (कृषि प्रकोष्ठ)
स्वदेशी जागरण मंच

कश्मीरी लाल
राष्ट्रीय महामंत्री (संगठन)
स्वदेशी जागरण मंच

कृषि जिंसों के वायदा पर प्रतिबंध जरूरी

इस समय उड़द, अरहर व चावल के वायदा कारोबार पर प्रतिबंध है लेकिन गेहूं, चीनी, सोया तेल, सरसों बीज, सोयाबीन आदि कृषि जिंसों का वायदा खुला हुआ है, इसलिए आम आदमी को खाद्य वस्तुओं की महंगाई से बचाने के लिए इन आवश्यक जिंसों के वायदा कारोबार पर प्रतिबंध लगाया जाना आवश्यक है। खाद्य जिंस के वायदा कारोबार से संबंधित कई महत्वपूर्ण रिपोर्ट में इन पर रोक लगाने की सिफारिशें की गई हैं।

■ **जयंतीलाल भंडारी**

यकीनन इस वर्ष जून और जुलाई के महीनों में दक्षिण–पश्चिमी मानसून की कमजोरी और सामान्य से लगभग 25 फीसद कम बारिश के कारण विभिन्न प्रकार की आर्थिक चिंताएं उत्पन्न हो गई हैं। इन दिनों देश के कृषि एवं आर्थिक विशेषज्ञ यह कहते दिख रहे हैं कि जून और जुलाई में मानसून की कमजोरी के कारण कृषि एवं उद्योग क्षेत्र को जो बुनियादी नुकसान हो चुका है, उसकी भरपाई अगस्त की अच्छी बारिश से भी नहीं हो पाएगी।

स्थिति यह है कि चालू मानसून में देरी का असर खरीफ फसलों की बुवाई पर पड़ना शुरू हो गया है। इस वजह से धान के साथ–साथ दलहन, तिलहन और मोटे अनाजों की बुवाई में भी भारी कमी देखने को मिली है। इतना ही नहीं, बाजार में खाद्य पदार्थ की महंगाई भी उभरकर सामने आ गई है।

गौरतलब है कि हमारे देश में मानसून जीवन रेखा की भूमिका निभाता है और कमजोर मानसून कई आर्थिक मुश्किलों का कारण माना जाता है। देश में आज भी देश की 60 प्रतिशत खेती मानसून पर ही आधारित है तथा देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि का योगदान 18 फीसद है। मानसून को केवल आर्थिक नजरिए से देखना शायद जायज नहीं है। देश के करोड़ों लोगों की रोजी–रोटी और रोजमर्रा की जिंदगी पर मानसून का सीधा प्रभाव होता है। मानसून की बारिश न केवल खरीफ, बल्कि रबी के लिए भी आवश्यक होती है। इस बारिश से जमीन, नदी, तालाब व नहरों को प्राप्त होने वाला पानी ही रबी की फसल का आधार होता है।

लेकिन इस बार कमजोर मानसून ने खरीफ के साथ–साथ रबी फसल की चिंताएं भी बढ़ा दी हैं। निसंदेह इस समय आर्थिक मंदी और विकास दर में कमी के मौजूदा दौर में अच्छे मानसून को संकट से उबारने का जरिया भी माना जा रहा था लेकिन अब मानसून कमजोर पड़ने से महंगाई दर भी बढ़ गई है। इसके अलावा कई महत्वपूर्ण उद्योग जैसे सोयाबीन,

अब मानसून कमजोर पड़ने से महंगाई दर भी बढ़ गई है। इसके अलावा कई महत्वपूर्ण उद्योग जैसे सोयाबीन, टेक्स्टाइल, शक्कर मिलें, दाल मिलें आदि जो सीधे तौर पर कृषि पर निर्भर हैं, पर भी संकट के बादल छा गए हैं। ऐसे परिदृश्य ने कृषि जिंसों के साथ–साथ औद्यगिक वस्तुओं की कीमतें भी बढ़ा दी हैं। खासतौर से कृषि जिंसों की महंगाई से आम आदमी भारी परेशानी का अनुभव कर रहा है।

टेक्स्टाइल, शक्कर मिलें, दाल मिलें आदि जो सीधे तौर पर कृषि पर निर्भर हैं, पर भी संकट के बादल छा गए हैं। ऐसे परिदृश्य ने कृषि जिंसों के साथ–साथ औद्यगिक वस्तुओं की कीमतें भी बढ़ा दी हैं। खासतौर से कृषि जिंसों की महंगाई से आम आदमी भारी परेशानी का अनुभव कर रहा है।

जुलाई 2012 में खाद्य वस्तुओं की महंगाई दर ग्यारह फीसद के उच्च स्तर पर पहुंच गई है। जुलाई 2012 में पिछले महीने जून की तुलना में खाद्य वस्तुओं के दाम औसतन 35 फीसद तक बढ़ गए हैं तथा दाल, चावल और तेल की कीमतें आसमान छूने लगी हैं। इसके अलावा चीनी, चावल और गेहूं के दाम भी बढ़ गए हैं। इस दौरान सब्जियों के दाम भी औसतन 25 फीसद तक बढ़ गए हैं। इन सब्जियों में आम आदमी के उपयोग में आने वाले आलू, प्याज और टमाटर की कीमतों ने देखते ही देखते उपभोक्ताओं की रसोई का बजट बिगाड़ दिया है। अगले कुछ दिनों में भावों में और बढ़ोतरी की आशंका है।

चूंकि इस समय उड़द, अरहर व चावल के वायदा कारोबार पर प्रतिबंध है लेकिन गेहूं, चीनी, सोया तेल, सरसों बीज, सोयाबीन आदि कृषि जिंसों का वायदा खुला हुआ है, इसलिए आम आदमी को खाद्य वस्तुओं की महंगाई से बचाने के लिए इन आवश्यक जिंसों के वायदा कारोबार पर प्रतिबंध लगाया जाना आवश्यक है। खाद्य जिंस के वायदा कारोबार से संबंधित कई महत्वपूर्ण रिपोर्ट में इन पर रोक लगाने की सिफारिशें की गई हैं।

गौरतलब है कि अक्टूबर 2010 में महंगाई पर नजर रखने के लिए केंद्र सरकार द्वारा गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में गठित किए गए उपभोक्ता मामलों के कार्यसमूह ने सर्वानुमति से अपना अभिमत प्रस्तुत किया था कि आवश्यक कृषि जिंस के वायदा कारोबार को रोके जाने से खाद्य वस्तुओं की महंगाई पर नियंत्रण हो सकेगा।

इसके पहले कृषि संबधित विभिन्न पहलुओं पर अपनी सिफारिशें देने वाली संसद की स्थायी समिति ने जुलाई 2008 में अपनी रिपोर्ट संसद पटल पर रखते हुए कहा था कि देश में कृषि उत्पादों की कीमतों में कृत्रिम बढ़ोतरी के लिए वायदा कारोबार ही जिम्मेदार है।

विकसित देशों की तुलना में हमारे देश के वायदा कारोबार में कई कमियां हैं। विकसित देशों में वायदा कारोबार का परिदृश्य साफ होता है। उसमें सट्टेबाजी कम होती है। उसमें जो होता है, वह दिखता है किन्तु भारत में ऐसा नहीं है। भारत का वायदा कारोबार सट्टेबाजी के चंगुल में फंस गया है। भारत में कमोडिटी एक्सचेंजों में बड़ी कंपनियां और औद्योगिक घराने वर्चस्व बनाए हुए हैं।

रिपोर्ट में कहा गया था कि देश के 82 फीसद किसानों को वायदा व्यापार की जानकारी नहीं होने के कारण वे वायदा कारोबार का लाभ नहीं उठा पाते हैं। इसका लाभ केवल बिचौलिए उठाते हैं और इन्हीं बिचौलियों के कारण वस्तुओं की कीमतों में बनावटी उछाल आता है। इस तरह कृषि जिंसों की कीमतें बढ़ने से संबंधित अधिकांश अध्ययन रिपोर्ट में यह निष्कर्ष उभरकर सामने आ रहा है कि भारत में जब से कृषि जिंसों का कमोडिटी एक्सचेंज द्वारा वायदा व्यापार शुरू किया गया है, तभी से खाद्यान्नों की कीमतों में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। अभी भी कृषि जिंसों तथा अन्य कई वस्तुओं के अन्यायपूर्ण वायदा कारोबार से महंगाई बढ़ रही है।

सर्वेक्षण बता रहे हैं कि वायदा कारोबार से संबंधित अधिकांश खाद्य जिंसों की कीमतों में पिछले एक वर्ष में 25 फीसद से अधिक की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। यह स्पष्ट है कि विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं की तरह भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए भी वायदा कारोबार लाभप्रद है। लेकिन विकसित देशों की तुलना में हमारे देश के वायदा कारोबार में कई कमियां हैं। विकसित देशों में वायदा कारोबार का परिदृश्य साफ होता है। उसमें सट्टेबाजी कम होती है। उसमें जो होता है, वह दिखता है किन्तु भारत में ऐसा नहीं है। भारत का वायदा कारोबार सट्टेबाजी के चंगुल में फंस गया है। भारत में कमोडिटी एक्सचेंजों में बड़ी कंपनियां और औद्योगिक घराने वर्चस्व बनाए हुए हैं।

वे सरकारी खाद्य नीतियों पर मजबूत पकड़ रख स्वार्थ–सिद्धि करते हुए भारी लाभ कमा रहे हैं। इस तरह कृषि जिंसों के वायदा कारोबार से महंगाई बढ़ने वाली विभिन्न उच्च स्तरीय समितियों और विभिन्न अध्ययन रिपोर्ट के आधार पर भी यह न्यायसंगत होगा कि जब इस वर्ष जुलाई 2012 में सरकार सूखे की स्थिति से निपटने की तैयारी कर रही है तो वह कृषि जिंसों खासतौर से गेहूं, चीनी, सोया तेल, सोयाबीन और सरसों के वायदा कारोबार पर भी रोक लगाए। ऐसा होने पर ही देश के करोड़ों लोगों को कृषि जिंसों की ऊंची होती हुई कीमतों की पीड़ा से राहत मिलेगी। □

किसके लिए खोलें बाजार

ओबामा और टाइम पत्रिका की आलोचना का उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था और बाजार को और खोलने का है ताकि विदेशी सामानों की भारत में बिक्री का रास्ता खुले और इसका लाभ अमेरिका और अन्य देशों को मिले। अमेरिका की अपनी समस्यायें हैं और हमारी अपनी। किसी देश में आर्थिक सुधार किन–किन क्षेत्रों में किस सीमा तक किये जायें। यह कोई दूसरा देश तय नहीं कर सकता है. . .

■ **निरंकार सिंह**

टाइम पत्रिका के बाद अब अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने भारत पर आर्थिक सुधारों की रफ्तार बढ़ाने का दबाव बनाना शुरू कर दिया है। ओबामा ने कठिन आर्थिक सुधारों पर बल देते हुए कहा कि ''भारत ने खुदरा जैसे कई क्षेत्रों में विदेशी निवेश पर रोक लगा रखी है। इससे भारत में निवेश का माहौल खराब हो रहा है। आर्थिक सुधारों की एक और लहर स्थितियां ठीक कर सकती है। ओबामा और टाइम पत्रिका की आलोचना का उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था और बाजार को और खोलने का है ताकि विदेशी सामानों की भारत में बिक्री का रास्ता खुले और इसका लाभ अमेरिका और अन्य देशों को मिले। अमेरिका की अपनी समस्यायें हैं और हमारी अपनी। किसी देश में आर्थिक सुधार किन–किन क्षेत्रों में किस सीमा तक किये जायें। यह कोई दूसरा देश तय नहीं कर सकता है। इसलिए इस संदर्भ में टाइम पत्रिका और अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की आलोचना का कोई मतलब नहीं है। भारत को यह देखना होगा आर्थिक सुधारों का उसे अब तक कितना फायदा या नुकसान हुआ है।

मनमोहन सिंह के राज में घोटाले पर घोटाले हो रहे हैं। उनके मंत्रिमंडल में 15 दागी मंत्री हैं जिन पर अन्ना हजारे की टीम ने गंभीर आरोप लगाये हैं। विकास की रोशनी भी मुम्बई, दिल्ली और चेन्नई जैसे कुछ बड़े महानगरों में सिमट कर रह गयी है और बाकी देश अंधेरे में फंसकर सिसक रहा है। उनकी सरकार ने जो भी नीतियां बनाई उसका सीधा फायदा अमीरों को हुआ। वह देश के आम आदमी को भूल गये। उन्होंने आम आदमी को महंगाई, बेरोजगारी और गरीबी से जूझने के लिए बेसहारा छोड़ दिया।

अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ डा. मनमोहन सिंह ने 1991 में देश को विकास का एक नया सपना दिखाया था। वित्त मंत्री के रूप में उन्होंने भारत की आर्थिक नीति को पूरी तरह से बदल दिया था। आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण का रास्ता खोलकर उन्होंने देश को भरोसा दिलाया था कि 2010 तक देश से बेरोजगारी खत्म हो जायेगी, सारी सड़कें पक्की हो जायेंगी, बिजली की समस्या खत्म हो जायेगी, किसान खुशहाल होंगे, मजदूरों की जरूरतें भी पूरी हो जायेंगी और देश विकसित देशों की कतार में खड़ा हो जायेगा। बीस साल बीत गये। मनमोहन सिंह वित्त मंत्री से प्रधानमंत्री बन गये लेकिन उनका सपना

हम अभी तक अपनी जनता को पानी–बिजली जैसी बुनियादी सुविधाएं भी मुहैया नहीं करा पाये। महंगाई ने आम आदमी का जीना मुश्किल कर दिया है। एक तरफ आवश्यक वस्तुओं के दाम उसकी पहुँच से बाहर होते जा रहे हैं तो दूसरी तरफ उस पर करों का बोझ लगातार बढ़ता जा रहा है। ऐसा लगता है कि वह चर्चिल की भविष्यवाणी को सिद्ध करना चाहते हैं।

सपना ही रह गया। इस दौरान गरीब और गरीब हो गये और अमीर और अमीर हो गये। हम अभी तक अपनी जनता को पानी–बिजली जैसी बुनियादी सुविधाएं भी मुहैया नहीं करा पाये। महंगाई ने आम आदमी का जीना मुश्किल कर दिया है। एक तरफ आवश्यक वस्तुओं के दाम उसकी पहुँच से बाहर होते जा रहे हैं तो दूसरी तरफ उस पर करों का बोझ लगातार बढ़ता जा रहा है। ऐसा लगता है कि वह चर्चिल की भविष्यवाणी को सिद्ध करना चाहते हैं। उसने कहा था कि ''भारत की आजादी का मतलब उसकी बरबादी होगा। भारतीय नेता राज चलाने के लायक नहीं है। हवा को छोड़कर कोई चीज (डबल रोटी का एक टुकड़ा तक) नहीं बचेगी जिस पर कर नहीं होगा।''

बहरहाल, भारत अभी बरबाद तो नहीं हुआ है लेकिन मनमोहन सिंह के राज में घोटाले पर घोटाले हो रहे हैं। उनके मंत्रिमंडल में 15 दागी मंत्री हैं जिन पर अन्ना हजारे की टीम ने गंभीर आरोप लगाये हैं। विकास की रोशनी भी मुम्बई, दिल्ली और चेन्नई जैसे कुछ बड़े महानगरों में सिमट कर रह गयी है और बाकी देश अंधेरे में फंसकर सिसक रहा है। उनकी सरकार ने जो भी नीतियां बनाई उसका सीधा फायदा अमीरों को हुआ। वह देश के आम आदमी को भूल गये। उन्होंने आम आदमी को महंगाई, बेरोजगारी और गरीबी से जूझने के लिए बेसहारा छोड़ दिया। इसलिए देश में एक ओर अरब पतियों की संख्या बढ़ गयी तो दूसरी तरफ गरीबों की संख्या बढ़ गयी। लेकिन इस तथ्य को छिपाने के लिए उसने गरीबी को पैमाना ही बदल दिया। सरकार ने पिछले कुछ सालों में जो काम किये हैं उससे कारपोरेट घरानों को काफी लाभ हुआ है। उसने कई सार्वजनिक प्रतिष्ठानों को औने–पौने दामों पर निजी घरानों को बेचा है। सांसदों और सरकारी कर्मचारियों के वेतन में भारी बढ़ोत्तरी की है और इसका बोझ जनता पर लाद दिया है। कहने को गरीबों के लिए महात्मा गांधी रोजगार गारंटी योजना शुरू की है। इस योजना के बावजूद देश की बहुसंख्यक जनता बेरोजगार है। इस योजना में भी लोगों को सौ दिन का काम नहीं मिलता है। इससे ग्रामीणों और गांवों की दशा में कोई गुणात्मक सुधार नहीं दिखायी दे रहा है। कुल मिलाकर यह योजना भी कुछ सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए सरकारी धन की हेराफेरी का माध्यम बन गयी है क्योंकि सरकार भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने में विफल साबित हो रही है।

मनमोहन सिंह के नेतृत्व में जब यूपीए की सरकार दोबारा सत्ता में आयी तो दुनिया मंदी की चपेट में थी। भारत भी इसकी मार से बच नहीं पाया क्योंकि 1991 की नीति के कारण से भारत उस व्यवस्था का हिस्सा बन चुका था। देश की विकास दर पर बुरा असर हुआ, निर्यात भी प्रभावित हुआ और लाखों लोग बेरोजगार हो गये। यूपीए की सरकार पिछले एक साल में आम आदमी से ज्यादा खास लोगों के साथ नजर आयी। सरकार ने अमीरों के कर में ज्यादा छूट देने की रणनीति पर काम किया। 2009 से 2010 के दौरान गरीबो को जितनी सब्सिडी दी गयी उसके चार गुने ज्यादा अमीरों को कर की छूट दी गयी। इससे साफ है कि सरकार ने मंदी के नाम पर देश के कारपोरेट सेक्टर और अमीरों को भारी फायदा पहुँचाया। पिछले एक साल में भारत ने महंगाई के सारे रिकार्ड तोड़ दिये।

वास्तव में हमारा विकास विदेशी पूंजी और विदेशी तकनीक से नहीं होगा। अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि किसी भी देश का विकास उसके ही आन्तरिक संसाधनों और शक्ति से संभव है। विदेशी पूंजी और विदेशी तकनीक का एक सीमा तक ही महत्व है। उस पर अत्यधिक निर्भरता से एक नयी तरह की गुलामी का खतरा पैदा हो जाता है। मनुष्य पहले उत्पादक है फिर उपभोक्ता। यदि हम उत्पादन नहीं करेंगे और केवल उपभोक्ता रहेंगे तो एक दिन कंगाली की हालत में पहुँच जायेंगे।

आम आदमी ने महंगाई की ऐसी मार कभी नहीं झेली थी। खाने–पीने के सामानों के दाम आसमान छूने लगे। 2009 में महंगाई की दर 20 फीसदी तक पहुँच गयी जो अभी भी कम नहीं है। इस रिकार्ड तोड़ महंगाई की वजह यह है कि सरकार ने कृषि को अनदेखा कर दिया। पिछले साल भीषण सूखे की वजह से किसानों ने दोहरी मार झेली। बाकी कसर सरकार ने कृषि क्षेत्र का सरकारी खर्च कम करके पूरा कर दिया। किसानों की मदद करने के बजाय सरकार ने फूड सब्सिडी में 400 करोड़ और खाद सब्सिडी में 3000 करोड़ रूपये की कमी कर दी। यह कैसी विचारधारा है कि अमीरों और कारपोरेट सेक्टर की मदद के लिए सरकार अपनी तिजोरी खोल देती है। लेकिन गरीब किसानों की मदद के लिए सरकार के पास पैसा नहीं है। इस नीति का क्या मतलब निकाला जाए। क्या यह मान लिया जाय कि सरकार पूरी तरह उद्योगपतियों, कारपोरेट सेक्टर और अमीरों के हाथों की कठपुतली बन गयी है।

पिछले कुछ सालों में सरकार ने आम आदमी के लिए न तो कोई पहल की और न ही कोई कानून बनाया। सरकार विकास के आकड़े दिखाकर अपनी पीठ ठोंक रही है कि मंदी के बावजूद भारत की विकास दर 6 फीसदी से ज्यादा है। लेकिन यह विकास दर किसी सरकार की वजह से नहीं बल्कि देश के लोगों की मेहनत का नतीजा है। अगर देश मंदी के दौर में भी विकास कर रहा है तो इसके लिए सरकार नहीं देश

की जनता को शाबाशी मिलनी चाहिए। सवाल यह है कि इस विकास के लिए सरकार ने क्या किया। कोई यह नहीं बता सकता है कि सरकार ने ऐसी कौन सी एक भी नीति अपनाई है जिसकी वजह से भारत का विकास हो रहा है। सबसे बड़ा सवाल यह है कि मनमोहन सिंह की विकास नीति क्या है और उसका उद्देश्य क्या है? पहली बात तो यह है कि क्या कोई विकास नीति या व्यवस्था है? देश की 70 फीसदी आबादी गांवों में रहती है और तीस प्रतिशत शहरो में। इस तीस प्रतिशत का कुछ हिस्सा औद्योगिक मजदूर हैं और कुछ चौथे वर्ग के कर्मचारी तथा उसमें भी कुछ तीसरे वर्ग के कर्मचारी हैं। यद्यपि शहरी क्षेत्रों में गरीबी और गन्दगी है, गन्दी बस्तियां हैं, फिर भी आबादी गांव से शहर की ओर लगातार भाग रही है। इस आबादी के एक छोटे हिस्से को ही वहां रोजगार मिल पाता है। फिर भी शहर की ओर आबादी का बढ़ाव जारी है। औद्योगिक मजदूरों और तीसरे एवं चौथे वर्ग के कर्मचारियों को छोड़कर बाकी लोग वहॉ आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत सम्पन्न हैं। उनमें से एक छोटा हिस्सा पाश्चात्य रहन–सहन की दृष्टि से काफी सुखी भी है। उसके बाद हैं विद्यालय तथा विश्वविद्यालय के छात्र। राजधानियों में सरकारी अधिकारी और मंत्री रहते हैं। अगर कोई आर्थिक या विकास की नीति है तो वह इन्हीं लोगों के लिए है। उसका दर्शन शिक्षित एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग का दर्शन है। ग्रामीण क्षेत्र में जो विशिष्ट वर्ग है, वह लगातार शहरी क्षेत्रों की ओर खिंचा जा रहा है।

इस आर्थिक विकास का उद्देश्य क्या है? इसका लक्ष्य यही है कि जितना है, उससे भी अधिक हमारे पास हो, हम और भी ऊँचा उठे। क्रान्तिकारी वर्गो

(समाजवादी–साम्यवादी) की अपेक्षा है कि जो उपलब्ध है, वह और भी लोगों को उपलब्ध किया जाय, अर्थात लाभों का वितरण हो। सारी राजनीति, सारी शिक्षा, सारे विशेषाधिकार इसी छोटे शीर्षस्थ तबके तक सीमित हैं। यह आवश्यक नहीं कि ये सभी पूँजीपति ही हों। मगर सबके सब विशेषाधिकार युक्त हैं और सार्वजनिक क्षेत्र हो औद्योगिक अर्थरचना का सबसे बड़ा हिस्सा है। कुछ थोड़े व्यक्तियों को छोड़कर, भारत का विशिष्ट वर्ग चाहता है कि तकनीक और भी अधिक आधुनिक हो औद्योगीकरण बढ़े तथा कृषि का अधिकाधिक यंत्रीकरण एवं रासायनीकरण हो। आज भारत में आधुनिकता का मर्म यही है। इसका नतीजा हमारे सामने है। समाज में विषमता बढ़ रही है। निम्न मध्य वर्ग का भी जीवन संकटों से घिरता जा रहा है। कुल मिलाकर देश की 60 फीसदी से अधिक आबादी तंगहाली और बदहाली में गुजर बसर कर रही है। इसकी पुष्टि मानव विकास सूचकांक और यूनीसेफ की रिपोर्ट से भी होती है। कुल मिलाकर बेकारी भी बढ़ती जा रही है। शिक्षितों की बेकारी भी बढ़ी है। साथ–साथ विषमता भी कम होने के बदले बढ़ ही रही है। इसके बावजूद हमारे उच्चवर्गीय और सत्ताधारी लोग निरन्तर आवश्यकताओं को बढ़ाने, अधिकाधिक प्राप्त करने और इस तरह उच्च से उच्चतर उठते जाने की 'विकास' और 'प्रगति' वाली पश्चिम की पुरानी कल्पनाओं पर मोहित है और यही वजह है कि समाजवादी नारों के बावजूद हमारी योजना तथा विकास के सारे कार्यक्रम अपनी राह बदलकर हमारी समस्याओं को उल्टे और अधिक पेचीदा बना रहे हैं।

आर्थिक सुधार का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसे जानने के लिए तीन

यह कैसी विचारधारा है कि अमीरों और कारपोरेट सेक्टर की मदद के लिए सरकार अपनी तिजोरी खोल देती है। लेकिन गरीब किसानों की मदद के लिए सरकार के पास पैसा नहीं है। इस नीति का क्या मतलब निकाला जाए। क्या यह मान लिया जाय कि सरकार पूरी तरह उद्योगपतियों, कारपोरेट सेक्टर और अमीरों के हाथों की कठपुतली बन गयी है।

सवालों पर विचार करने की जरूरत है। (1) गरीबी और भुखमरी कितनी कम हुई (2) रोजगार के अवसर कितने बढ़े हैं (3) क्या देश के भीतर गैर बराबरी कम हुई है। इन तीनों सवालों के जवाब 'नहीं' में मिलते हैं। बेरोजगारी और विषमता बढ़ी है। पर इसमें कोई संदेह नहीं है कि वैश्वीकरण की वजह से अवसरों के नये द्वार खुले हैं। रोजगार, नये मध्यवर्ती उत्पाद, नई प्रौद्योगिकी और नये विचारों के लिहाज से आज अवसर पहले के मुकाबले काफी अधिक है। जाहिर तौर पर प्रतिस्पर्धा बढ़ने के कारण निम्न उत्पादक क्षेत्रों में कई श्रमिकों को अपने रोजगार से हाथ धोना पड़ा है। बड़ी संख्या में गरीब लोगों को इन नये अवसरों का फायदा उठाने और नई गतिविधियों और क्षेत्रों में अपने आप को समायोजित करने में दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे में कई तरह

दुनिया की सबसे अधिक उपजाऊ भूमि हमारे पास है। जैव विविधता के क्षेत्र में हमारा देश खासतौर से समृद्ध है। बस हम लक्ष्य निर्धारित करें और ईमानदारी से उसे हासिल करने में जुट जायें, तो कोई भी काम मुश्किल नहीं है।

की बाधाएं पैदा हो रही हैं। जिस आईटी सेक्टर को लेकर हम फूले नहीं समा रहे थे वहां भी मंदी के दौरान लाखों लोग बेरोजगार हो गये। वे आज भी रोजगार के लिए भटक रहे हैं। उधर नये डिग्रीधारियों को भी हम कोई रोजगार उपलब्ध नहीं करा पा रहे हैं। सरकार ने सबकुछ बाजार के भरोसे छोड़ दिया है।

वास्तव में हमारा विकास विदेशी पूंजी और विदेशी तकनीक से नहीं होगा। अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि किसी भी देश का विकास उसके ही आन्तरिक संसाधनों और शक्ति से संभव है। विदेशी पूंजी और विदेशी तकनीक का एक सीमा तक ही महत्व है। उस पर अत्यधिक निर्भरता से एक नयी तरह की गुलामी का खतरा पैदा हो जाता है। मनुष्य पहले उत्पादक है फिर उपभोक्ता। यदि हम उत्पादन नहीं करेंगे और केवल उपभोक्ता रहेंगे तो एक दिन कंगाली की हालत में पहुंच जायेंगे। इसलिए कृषि विकास हमारी विकास योजनाओं का मुख्य आधार बनना चाहिए। इसकी बुनियाद पर ही गृह उद्योगों और ग्रामोद्योगों की एक रूपरेखा गांवों के विकास की बननी चाहिए। उसमें बिजली, परिवहन और बाजार आदि की सुविधाएं भी उलपब्ध करायी जायें। देश में जहां पूंजी की कमी हो और मानव शक्ति बड़े पैमाने पर बेकार पड़ी हो तथा देश की अधिसंख्य आबादी गांवों में बसती हो, वहां योजना की बुनियाद बदलनी चाहिए। हमारे पास प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों की कमी नहीं है। दुनिया की सबसे अधिक उपजाऊ भूमि हमारे पास है। जैव विविधता के क्षेत्र में हमारा देश खासतौर से समृद्ध है। बस हम लक्ष्य निर्धारित करें और ईमानदारी से उसे हासिल करने में जुट जायें, तो कोई भी काम मुश्किल नहीं है। □

आग में झुलसता असम

बोडो आदिवासी पहले मेघालय की सीमा से सटे ग्वालपाड़ा और कामरूप जिले तक फैले थे। अवैध बांग्लादेशी घुसपैठियों की भारी बसावट के कारण वे तेजी से सिमटते गए। अब तो संकट उनकी पहचान और अस्तित्व बचाए रखने का है। दूसरी ओर इस्लामी चरमपंथी इस बात पर तुले हैं कि बोडोलैंड क्षेत्रीय परिषद (बीटीसी) के इलाके के जिन गांवों में बोडो समुदाय की आबादी आधी से कम है उन्हें बीटीसी से बाहर किया जाए। सच यह है कि असम के जिन क्षेत्रों में मुस्लिम धर्मावलंबी बहुमत प्राप्त कर चुके हैं वहां से इस्लामी कट्टरपंथी अब गैर मुस्लिमों को पलायन के लिए विवश कर रहे हैं।

■ **बलवीर पुंज**

पिछले दिनों की असम में हिंसक घटनाएं और आगजनी तथाकथित सेक्युलर दलों की कुत्सित राजनीति का परिणाम है। असम की वर्तमान हिंसा जातीय न होकर सीमा पार से आए मुस्लिम घुसपैठियों के हाथों स्थानीय जनजाति के लोगों की अपनी पहचान, सम्मान और संपत्ति की रक्षा का संघर्ष है। विगत 19 जुलाई से भड़की हिंसा में अब तक जहां 58 लोग अकाल मृत्यु के शिकार हुए वहीं करीब तीन लाख लोग अपने घरों से उजड़कर राहत शिविरों में रहने के लिए मजबूर हैं। इन शिविरों में खाने–पीने, सोने और दवा की व्यवस्था तक नहीं है। हिंसा के खौफ से गांव के गांव खाली हो गए। दंगाइयों ने इन गांवों के वीरान घरों और खेतों में लगी फसल को आग के हवाले कर दिया।

मीडिया की खबरों के अनुसार सरकार को अंदेशा है कि दंगाइयों का अगला निशाना अब कोकराझाड़ के पड़ोसी जिले बन सकते हैं, इसलिए वह उन्हें खाली कराने पर विचार कर रही है। इस खबर में एक सेवानिवृत्त स्टेशन मास्टर बासुमतारी का उल्लेख है, जिसने बताया कि उन्होंने स्थानीय विधायक प्रदीप से रक्षा की गुहार लगाई तो उन्होंने पर्याप्त पुलिस बल नहीं होने की लाचारी दिखाई। गांव वालों के अनुसार टकराव की स्थिति तब बनी जब घुसपैठियों ने कोकराझाड़ के बेडलंगमारी के वनक्षेत्र में अतिक्रमण कर वहां ईदगाह होने का साइनबोर्ड लगा दिया। वन विभाग के अधिकारियों ने बोडो लिबरेशन टाइगर्स (बीएलटी) के साथ मिलकर यह अतिक्रमण हटा दिया। इसके विरोध में ऑल बोडोलैंड माइनारिटी स्टूडेंट यूनियन (एबीएमएसयू) ने कोकराझाड़ जिले में बंद का आह्वान किया था। 6 जुलाई को अंथिपारा में अज्ञात हमलावरों ने एबीएमएसयू के दो सदस्यों की गोली मारकर हत्या कर दी। 19 जुलाई को एमबीएसयू के पूर्व प्रमुख और उनके सहयोगी की हत्या हो गई। अगले दिन घुसपैठियों की भीड़ ने बीएलटी के चार

बांग्लादेशियों ने उनके घर और खेत जला दिए। कोकराझाड़, चिरांग, बंगाईगांव, धुबरी और ग्वालपाड़ा से स्थानीय बोडो आदिवासियों को हिंसा के बल पर खदेड़ भगाने वाले अवैध बांग्लादेशी घुसपैठिए हैं, जिनके कारण न केवल असम के जनसांख्यिक स्वरूप में तेजी से बदलाव आया है, बल्कि देश के कई अन्य भागों में भी बांग्लादेशी अवैध घुसपैठिए कानून एवं व्यवस्था के लिए गंभीर खतरा बने हुए हैं।

बांग्लादेश से आए अवैध घुसपैठियों की पहचान के लिए वर्ष 1979 में असम में व्यापक विरोध प्रदर्शन हुआ। इसी कारण 1983 के चुनावों का बहिष्कार भी किया गया, क्योंकि बिना किसी पहचान के लाखों बांग्लादेशियों का नाम मतदाता सूची में दर्ज कर लिया गया था।

सदस्यों की बर्बरतापूर्वक हत्या कर दी। इसके बाद ही बासुमतारी और अन्य गांव वाले हिंसा की आशंका में राहत शिविरों में चले गए। दूसरे दिन बांग्लादेशियों ने उनके घर और खेत जला दिए। कोकराझाड़, चिरांग, बंगाईगांव, धुबरी और ग्वालपाड़ा से स्थानीय बोडो आदिवासियों को हिंसा के बल पर खदेड़ भगाने वाले अवैध बांग्लादेशी घुसपैठिए हैं, जिनके कारण न केवल असम के जनसांख्यिक स्वरूप में तेजी से बदलाव आया है, बल्कि देश के कई अन्य भागों में भी बांग्लादेशी अवैध घुसपैठिए कानून एवं व्यवस्था के लिए गंभीर खतरा बने हुए हैं।

हुजी जैसे आतंकी संगठनों की गतिविधियां इन्हीं घुसपैठियों की मदद से चलने की खुफिया जानकारी होने के बावजूद कुछ सेक्युलर दल बांग्लादेशियों को भारतीय नागरिकता देने की मांग कर रहे हैं। कुछ समय पूर्व गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने तल्ख टिप्पणी की थी कि ये अवैध घुसपैठिए राज्य में किंगमेकर बन गए हैं। असम को पाकिस्तान का अंग बनाने का सपना फखरुद्दीन अली अहमद ने देखा था। जनसांख्यिक स्वरूप में बदलाव लाने के लिए असम में पूर्वी बंगाली मुसलमानों की घुसपैठ 1937 से शुरू हुई।

पश्चिम बंगाल से चलते हुए उत्तर प्रदेश, बिहार व असम के सीमावर्ती क्षेत्रों में अब इन अवैध घुसपैठियों के कारण एक स्पष्ट भूपट्टी विकसित हो गई है, जो मुस्लिम बहुल है। 1901 से 2001 के बीच असम में मुसलमानों का अनुपात 15.03 प्रतिशत से बढ़कर 30.92 प्रतिशत हो गया। इस दशक में असम के अनेक इलाकों में मुसलमानों की आबादी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है और यह तेजी से बढ़ रही है।

बांग्लादेश से आए अवैध घुसपैठियों की पहचान के लिए वर्ष 1979 में असम में व्यापक विरोध प्रदर्शन हुआ। इसी कारण 1983 के चुनावों का बहिष्कार भी किया गया, क्योंकि बिना किसी पहचान के लाखों बांग्लादेशियों का नाम मतदाता सूची में दर्ज कर लिया गया था। चुनाव बहिष्कार के कारण केवल 10 प्रतिशत मतदान ही दर्ज हो सका।

विडंबना यह है कि शुचिता की नसीहत देने वाली कांग्रेस पार्टी ने इसे ही पूर्ण जनादेश माना और राज्य में चुनी हुई सरकार का गठन कर लिया गया। यह अनुमान करना कठिन नहीं कि 10 प्रतिशत मतदान करने वाले इन्हीं अवैध घुसपैठिओं के संरक्षण के लिए कांग्रेस सरकार ने जो कानून बनाया वह असम के बहुलतावादी स्वरूप के लिए अब नासूर बन चुका है।

2008 में सर्वोच्च न्यायालय ने कांग्रेस द्वारा 1983 में लागू किए गए अवैध आव्रजन अधिनियम को निरस्त कर अवैध बांग्लादेशियों को राज्य से निकाल बाहर करने का आदेश पारित किया था, किंतु कांग्रेसी सरकार इस कानून को लागू रखने पर आमादा है। इस

बोडो आदिवासियों के साथ हिंसा एक सुनियोजित साजिश है। जिस तरह कश्मीर से कश्मीरी पंडितों को हिंसा के बल पर खदेड़ भगाया गया, हिंदू बोडो आदिवासियों के साथ भी पिछले कुछ सालों से इस्लामी जिहादी यही प्रयोग कर रहे हैं। 2008 में भी पांच सौ से अधिक बोडो आदिवासियों के घर जलाए गए थे, करीब सौ लोग मारे गए और लाखों विस्थापित हुए थे। तब असम के उदलगिरी जिले के सोनारीपाड़ा और बाखलपुरा गांवों में बोडो आदिवासियों के घरों को जलाने के बाद बांग्लादेशी मुसलमानों द्वारा पाकिस्तानी झंडे लहराए गए थे।

अधिनियम में अवैध घुसपैठिया उसे माना गया जो 25 दिसंबर, 1971 (बांग्लादेश के सृजन की तिथि) को या उसके बाद भारत आया हो। इससे स्वतः उन लाखों मुस्लिमों को भारतीय नागरिकता मिल गई जो पूर्वी पाकिस्तान से आए थे। तब से सेक्युलरवाद की आड़ में अवैध बांग्लादेशियों की घुसपैठ जारी है और उन्हें देश से बाहर निकालने की राष्ट्रवादी मांग को फौरन सांप्रदायिक रंग देने की कुत्सित राजनीति भी अपने चरम पर है।

बोडो आदिवासियों के साथ हिंसा एक सुनियोजित साजिश है। जिस तरह कश्मीर से कश्मीरी पंडितों को हिंसा के बल पर खदेड़ भगाया गया, हिंदू बोडो आदिवासियों के साथ भी पिछले कुछ सालों से इस्लामी जिहादी यही प्रयोग कर रहे हैं। 2008 में भी पांच सौ से अधिक बोडो आदिवासियों के घर जलाए गए थे, करीब सौ लोग मारे गए और लाखों विस्थापित हुए थे। तब असम के उदलगिरी जिले के सोनारीपाड़ा और बाखलपुरा गांवों में बोडो आदिवासियों के घरों को जलाने के बाद बांग्लादेशी मुसलमानों द्वारा पाकिस्तानी झंडे लहराए गए थे। इससे पूर्व कोकराझाड़ जिले के भंडारचारा गांव में अलगाववादियों ने स्वतंत्रता दिवस के दिन तिरंगे की जगह काला झंडा लहराने की कोशिश की थी।

सेक्युलर मीडिया और राजनीतिक दल वर्तमान हिंसा को जातीय संघर्ष के रूप में पेश करने की कोशिश कर रहे हैं, जबकि कटु सत्य यह है कि यह हिंसा जिहादी इस्लाम से प्रेरित है, जिसमें गैर मुस्लिमों के लिए कोई स्थान नहीं है। बोडो आदिवासी पहले मेघालय की सीमा से सटे ग्वालपाड़ा और कामरूप जिले तक फैले थे। अवैध बांग्लादेशी घुसपैठियों की भारी बसावट के कारण वे तेजी से सिमटते गए। अब तो संकट उनकी पहचान और अस्तित्व बचाए रखने का है। दूसरी ओर इस्लामी चरमपंथी इस बात पर तुले हैं कि बोडोलैंड क्षेत्रीय परिषद (बीटीसी) के इलाके के जिन गांवों में बोडो समुदाय की आबादी आधी से कम है उन्हें बीटीसी से बाहर किया जाए। सच यह है कि असम के जिन क्षेत्रों में मुस्लिम धर्मावलंबी बहुमत प्राप्त कर चुके हैं वहां से इस्लामी कट्टरपंथी अब गैर मुस्लिमों को पलायन के लिए विवश कर रहे हैं। □

सदस्यता संबंधी सूचना

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है।

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	100/–	1000/–
अंग्रेजी	100/–	1000/–

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

पता : **स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22**

ट्रिकल डाउन थ्योरी से बचिये

अर्थशास्त्रियों को नये ढ़ंग से सोचना पड़ेगा। आटोमेटिक मशीनों एवं इन्टरनेट के कारण श्रम ही अप्रासंगिक होता जा रहा है। एक प्रकार से यह एक सुखद उपलब्धि है। मनुष्य को जीवित रहने के लिये श्रम करना अनिवार्य नहीं रह गया है। समय का सदुपयोग वह अपने आत्म–विकास के लिये कर सकता है जैसे क्रिकेट खेलने, चित्रकारी करने, संगीत का रियाज करने में। परन्तु श्रम के साथ–साथ उसका जीवन भी व्यर्थ होता जा रहा है। उसके पास रोजगार नहीं है। ऐसी अर्थव्यवस्था बनानी होगी कि श्रम की मांग बढ़े।

■ **डॉ. भरतझुनझुनवाला**

वित्त मंत्री चिदम्बरम् द्वारा प्रस्तावित रिर्फाम एजेन्डा का सीधा लाभ अमीरों को मिलेगा। खुदरा रिटेल में विदेशी निवेश को छूट देने से वालर्माट जैसी बड़ी कम्पनियों के लिये भारत में और लाभ कमाने का रास्ता खुल जायेगा। गुड्स एवं सर्विस टैक्स से टैक्स प्रणाली सरल होगी और पुनः व्यापारियों के लाभ कमाने के अवसर खुलेंगे। तथापि सरकार का मानना है कि इन सुधारों से अर्थव्यवस्था में गति आयेगी जिसका लाभ अंततः आम आदमी को मिलेगा। इस सोच का आधार ट्रिकल डाउन थ्योरी है।

'ट्रिकल डाउन' थ्योरी है कि आर्थिक विकास से अमीरों की आय बढ़ेगी तो गरीबों के घर में भी उस आय का एक अंश टपकेगा। इस सोच के आधार पर सरकार ने अमीरों द्वारा देय आयकर में भारी कटौती की है। आज से 25 वर्ष पूर्व अमीरों की आय पर 70–80 प्रतिशत आयकर वसूला जाता था। आज यह 30–40 प्रतिशत रह गया है। इसी प्रकार अमरीका राष्ट्रपति रीगन ने आयकर की अधिकतम दर को 70 प्रतिशत घटाकर 28 प्रतिशत कर दिया था। सोच है कि अमीरों से टैक्स कम वसूल किया जायेगा तो अमीरों के पास धन अधिक होगा। वे इस धन का निवेश शेयर बाजार में करेंगे। इससे कंपनियों के लिये बाजार से पूंजी उठाना आसान हो जायेगा। कम्पनियां अधिक मात्रा में निवेश करेंगी। नई फैट्रियां लगेंगी और हाइवे बनेंगे। फैक्ट्रियों में रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे जिससे गरीब की माली हालत सुधरेगी। इन्हीं फैक्ट्रियों से नई तकनीकों से माल का उत्पादन होगा जिससे उपभोक्ता को सस्ता माल मिलेगा और उसका जीवन स्तर सुधरेगा। इस प्रकार अमीर की बढ़ती अमीरी से अंततः गरीब लाभान्वित होगा।

ट्रिकल डाउन थ्योरी में समस्या है कि अमीर द्वारा अर्जित अतिरिक्त पूंजी का निवेश फक्ट्रियों में किया जाना अनिवार्य नहीं हैं। संभव है कि अमीर द्वारा प्रापर्टी अथवा सोना खरीदा जाये। ऐसा होने पर न तो रोजगार बनेंगे और न ही उपभोक्ता को सस्ता माल मिलेगा। टैक्स जस्टिस नेटवर्क द्वारा कराये गये अध्ययन में पाया गया है कि अमीरों की आय ट्रिकल डाउन करके अर्थव्यवस्था को नहीं सुधारती है। इनके द्वारा अधिकतर पूंजी को टैक्स हेवन भेज दिया जाता है। टैक्स हेवन वे छोटे देश होते हैं जो आयकर आरोपित नहीं करते हैं। इससे अमीरों के लिये काले धन अथवा दूसरी आय को इन देशों के बैंकों में जमा कराना आसान हो जाता है।

ट्रिकल डाउन थ्योरी में समस्या है कि अमीर द्वारा अर्जित अतिरिक्त पूंजी का निवेश फक्ट्रियों में किया जाना अनिवार्य नहीं हैं। संभव है कि अमीर द्वारा प्रापर्टी अथवा सोना खरीदा जाये। ऐसा होने पर न तो रोजगार बनेंगे और न ही उपभोक्ता को सस्ता माल मिलेगा। टैक्स जस्टिस नेटवर्क द्वारा कराये गये अध्ययन में पाया गया है कि अमीरों की आय ट्रिकल डाउन करके अर्थव्यवस्था को नहीं सुधारती है। इनके द्वारा अधिकतर पूंजी को टैक्स हेवन भेज दिया जाता है। टैक्स हेवन वे छोटे देश होते हैं जो आयकर आरोपित नहीं करते हैं। इससे अमीरों के लिये काले धन अथवा दूसरी आय को इन देशों के बैंकों में जमा कराना आसान हो जाता है। अमीर की बढ़ती अमीरी से अंततः गरीब लाभान्वित होगा।

दूसरी समस्या है कि उत्पादन बढ़ाने को रोजगार सृजन आवश्यक नहीं है। उद्यमियों के लिये लाभप्रद है कि आटोमेटिक मशीनों से उत्पादन बढ़ायें। ऐसे में कम्पनियों के लाभ एवं उत्पादन बढ़ता है परन्तु रोजगार घटते हैं। आर्थिक विकास

की प्रक्रिया में अमीर लोग समृद्ध होते हैं। पूंजी की अधिकता के कारण ब्याज दर में गिरावट आती है। ब्याज दर में कमी आने से मशीनों में निवेश लाभप्रद हो जाता है। दूसरी तरफ आर्थिक विकास के कारण ही श्रमिकों का जीवन स्तर उठता है। उनके वेतन बढ़ते हैं। पूंजी के सस्ते होने एवं श्रम के महंगे होने से उद्यमी के लिये श्रमिक को रोजगार देना हानिप्रद हो जाता है।

ट्रिकल डाउन थ्योरी के विरोध में दूसरे अर्थशास्त्रियों का कहना है कि ट्रिकल अप की विधि को अपनाना चाहिये। अमीर को टैक्स में छूट देने के स्थान पर गरीब को छूट देनी चाहिये। गरीब की आय बढ़ेगी तो जनहित का उद्देश्य सीधे एवं स्पष्ट रूप से हासिल हो जायेगा। साथ–साथ आर्थिक विकास भी होगा। गरीब की आय बढ़ने से बाजार में माल की मांग बढ़ेगी। माल के दाम बढ़ेगें। माल के उत्पादन में कम्पनियों के लाभ बढ़ेंगे। कम्पनियां लाभ कमाने के लिये निवेश करेंगी। इससे रोजगार उत्पन्न होंगे। मुझे यह विधि सही दिखती है।

अर्थशास्त्रियों को नये ढ़ंग से सोचना पड़ेगा। आटोमेटिक मशीनों एवं इन्टरनेट के कारण श्रम ही अप्रासंगिक होता जा रहा है। एक प्रकार से यह एक सुखद उपलब्धि है। मनुष्य को जीवित रहने के लिये श्रम करना अनिवार्य नहीं रह गया है। समय का सदुपयोग वह अपने आत्म–विकास के लिये कर सकता है जैसे क्रिकेट खेलने, चित्रकारी करने, संगीत का रियाज करने में। परन्तु श्रम के साथ–साथ उसका जीवन भी व्यर्थ होता जा रहा है। उसके पास रोजगार नहीं है। ऐसी अर्थव्यवस्था बनानी होगी कि श्रम की मांग बढ़े। पूंजी सघन के स्थान पर श्रम सघन आर्थिक विकास करना होगा। मशीनों पर टैक्स और श्रम पर

सब्सिडी देनी होगी। इससे आर्थिक विकास धीमा पड़ेगा जिसे स्वीकार करना होगा। जाड़े में सिगड़ी रख कर सोने से आराम मिलता है परन्तु मृत्यु भी हो जाती है उसी प्रकार पूंजी–सघन आर्थिक विकास से कुल उत्पादन बढ़ रहा है परन्तु सम्पूर्ण मानवता मृतप्राय होती जा रही है। आर्थिक विकास पर लगाम लगाकर मानव विकास को लक्ष्य बनाना होगा।

समस्या का हल सरकारी नौकरियों में वृद्धि से हासिल नहीं होगा। जब अधिकाधिक श्रमिक सरकारी कर्मचारी होंगे तब इन्हें वेतन देने के लिये टैक्स किससे वसूल किया जायेगा? कम्युनिस्ट देशों का अनुभव बताता है कि सरकार का असीमित विस्तार सम्भव नहीं है। सोवियत रूस के पतन का एक प्रमुख कारण सरकारी फौज में अतिशय वृद्धि थी।

कांग्रेस एवं भाजपा की पालिसी है कि अमीर को और अमीर बनाकर बाद में उस पर टैक्स लगाया जाये। इसके स्थान पर ऐसी आर्थिक नीतियां बनानी चाहिये कि पूंजी के लाभ कम हो जायें और श्रम के अवसर बढ़ जायें। मसलन किन्हीं गांधीवादी ने सुझाव दिया था कि घरेलू बाजार में बिक्री के लिये बनने वाले कपड़े को पूर्णतया हथकरघों के लिये आरक्षित कर दिया जाये। इससे टैक्सटाइल मिलों के लाभ घटेंगे और जुलाहों के बढ़ेंगे। बाजार में कपड़ों का दाम भी कुछ बढ़ेगा। योजना आयोग को चाहिये कि अध्ययन करके श्रम की वांछित मात्रा में मांग बढ़ाने के लिये किन उद्योगों पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिये।

दूसरा विषय सरकारी सेवाओं की डिलीवरी का है। खाद्य पदार्थों, फर्टीलाइजर एवं पेट्रोल सब्सिडी तथा सरकारी स्वास्थ एवं शिक्षा सेवायें सभी इस समस्या से पीड़ित हैं। इन योजनाओं का लाभ गरीब तक कम ही पहुंचता है। राजीव गांधी ने 15 प्रतिशत पहुंच का आकलन किया था। इस मुद्दे पर कांग्रेस एवं भाजपा प्रशासनिक सुधारों से डिलेवरी में सुधार करना चाहते हैं जैसे छठे वेतन आयोग ने इन्सेन्टिव का सुझाव दिया है। साथ–साथ इन सुविधाओं को गरीबतम लाभार्थियों के ऊपर टार्गेट करने का प्रयास किया गया है जैसे खाद्य सब्सिडी में बीपीएल का हिस्सा बढ़ा दिया गया है। परन्तु सरकारी कर्मचारियों का चरित्र मैगनेट जैसा होता है। उनसे कुछ लेने के लिये जनता को विशेष ताकत लगानी पड़ती है जैसे मैगनेट में चिपके लोहे को छुड़ाने में। □

मानसून और भविष्यवाणियाँ

मौसम विभाग केवल कयास लगाता रहता है। उसकी भविष्यवाणियां अक्सर गलत साबित होती है। जब वह आता है तो ऐसा आता है कि बाढ़ की स्थिति पैदा कर देता है। दूसरी ओर सूखे की स्थिति उत्पन्न कर देता है। मानसून का आना कहीं कहर बरपाता है तो कहीं उसका न आना भविष्य को ही दांव पर लगा देता है। इस बार भी मानसून फिर भटक गया है। उसके इस भटकाव ने देश की भावी योजनाओं पर पानी फेर दिया है।

■ **महेश परिमल**

इस देश के लिए मानसून एक ऐसी अबूझ पहेली है, जिसे पार पाना संभव नहीं है। एक तो वह अपने आने की आमद देता है। यह भी सूचना देता है कि इस बार वह पूरी पृथ्वी को तर कर देगा। फिर वह तय समय पर नहीं आता। भटक जाता है कहीं। उसके बाद आकर फिर कहीं चला जाता है। कई दिनों तक उसका अता–पता नहीं मिलता। मौसम विभाग केवल कयास लगाता रहता है। उसकी भविष्यवाणियां अक्सर गलत साबित होती है। जब वह आता है तो ऐसा आता है कि बाढ़ की स्थिति पैदा कर देता है। दूसरी ओर सूखे की स्थिति उत्पन्न कर देता है। मानसून का आना कहीं कहर बरपाता है तो कहीं उसका न आना भविष्य को ही दांव पर लगा देता है। इस बार भी मानसून फिर भटक गया है। उसके इस भटकाव ने देश की भावी योजनाओं पर पानी फेर दिया है।

भविष्यवाणियों पर भरोसा छोड़ें जब अत्याधुनिक वैज्ञानिक उपकरण नहीं थे, तब किसान किस तरह से मानसून के आने से पहले अपनी तैयारियां कर लेते थे। घाघ–भड्डरी की कहावतों के आधार पर ही किसान समझ जाते थे कि बारिश होगी भी या नहीं। होगी तो कितनी?

मानसून को लेकर की जा रही तमाम भविष्यवाणियां बेकार सिद्ध हुई। पहले तो कहा गया था कि इस बार बारिश अच्छी होगी। फिर कहा गया कि बारिश कम होने के आसार हैं। फिर कहा जाने लगा कि किसान ऐसी फसल लें, जिसमें कम पानी लगता हो।

स्पष्ट है कि मानसून अच्छा होगा तो देश संभल जाएगा, लेकिन मानसून थोड़ा–सा भी कमजोर पड़ा तो वह देश को बुरी तरह से आर्थिक संकट में डाल देगा। मानसून के गणित को अभी तक किसी ने समझने की कोशिश नहीं की है। देश यदि सारी योजनाएं कमजोर मानसून को लेकर तैयार करे तो संभव है कि अच्छा मानसून देश में खुशहाली ला दे। दूसरी ओर कमजोर मानसून के लिए तो हम पहले से ही तैयार हैं। भविष्यवाणियों पर भरोसा छोड़ें जब अत्याधुनिक वैज्ञानिक उपकरण नहीं थे, तब किसान किस तरह से मानसून के आने से पहले अपनी तैयारियां कर लेते थे। घाघ–भड्डरी की कहावतों के आधार पर ही किसान समझ जाते थे कि बारिश होगी भी या नहीं। होगी तो कितनी?

इस बार मानसून भले ही देर से आया, पर अभी तक कहीं भी भरपूर नहीं बरसा है। अब मौसम विभाग भी अत्याधुनिक उपकरणों से सुसज्जित हो गया है, लेकिन 24 घंटे पहले ही जोरदार बारिश की चेतावनी 48 घंटे बाद भी फलीभूत नहीं हो

नेताओं द्वारा हेलीकॉप्टर से बाढ़ का दृश्य देखने के बाद भी किसी की समझ में यह नहीं आया कि इस पानी का उपयोग किस तरह से किया जाए। कमर कसने का वक्त विगत 11 जुलाई को केंद्र सरकार द्वारा की गई हालात की उच्चस्तरीय समीक्षा का निष्कर्ष रहा कि कमजोर मानसून के खेती पर बुरे असर के बावजूद बाजार में चावल, गेहूं और चीनी की कमी नहीं होगी, लेकिन दालों और पशुओं के चारे की उपलब्धता पर जरूर असर पड़ेगा।

पाती। इससे मौसम विभाग भी संदिग्ध बन जाता है। अगर किसान पूरी तरह से मौसम विभाग पर विश्वास करना सीख लें तो उन्हें जो परेशानियां होंगी, वह किसी से कही भी नहीं जा सकेगी। मौसम विभाग अब भी सटीक भविष्यवाणी नहीं कर पा रहा है। इसके बाद भी बाढ़, चक्रवात आदि आते ही रहते हैं।

हाल ही में जब सभी राज्य मानसून की प्रतीक्षा कर रहे थे, तब वह भटककर असम जा पहुंचा और वहां बाढ़ की स्थिति पैदा कर दी। अब तक वहां सौ से भी अधिक लोग मौत के शिकार हुए हैं। अन्य हानियों का हिसाब ही नहीं लगाया गया है। असम के लिए केंद्र सरकार ने 500 करोड़ रुपये मंजूर किए हैं। बाढ़ से देश में हर वर्ष करीब 1800 करोड़ का नुकसान होता है। पिछले 12 वर्षो में करीब 16,000 लोग अपनी जान गवां बैठे हैं। बाढ़ के कारण खेती को हर वर्ष 500 करोड़ रुपये का नुकसान होता है। भारत में शासन करने वाले अंग्रेज यह समझ गए थे कि यहां बारिश का होना अतिआवश्यक है, क्योंकि इससे ही कृषि उत्पादन जुड़ा हुआ है। सिंचाई के साधन बहुत ही कम हैं। ऐसे में बारिश का पानी ही एकमात्र साधन है कृषि के लिए। इसे ध्यान में रखते हुए उन्होंने देश के विभिन्न स्थानों पर मौसम केंद्रों की स्थापना की।

सबसे पहले 1796 में चेन्नई, उसके बाद 1826 में मुंबई में मौसम केंद्र स्थापित किए। 1875 तक तो पूरे देश में मौसम केंद्रों की स्थापना हो चुकी थी। ये केंद्र उस समय भी विफल साबित हुए थे, आज भी हो रहे हैं। बारिश इंसान के जीवन से जुड़ी एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। देश के कई शहरों में पानी की समस्या है, कहीं बिजली की। इसके पीछे यही बारिश है। बारिश भले ही कम हो, पर इसका इस्तेमाल भरपूर हो तो कोई बात ही नहीं है कि देश में पानी की कमी हो। आज पानी का दुरुपयोग बहुत हो रहा है। बोरवेल के माध्यम से धरती की छाती छलनी हो गई है। इस कारण पानी की स्तर लगातार नीचे जा रहा है।

बाढ़ आदि से करोड़ों क्यूबिक पानी बेकार चला जाता है, इसे बचाने और रोकने की दिशा में हम आज भी कुछ नहीं कर पाए हैं। बाढ़ से लोगों की रक्षा के लिए एक छोटी–सी कोशिश उत्तर प्रदेश में हुई है। वहां यह व्यवस्था की गई है कि यदि बाढ़ आए तो लोगों को ऊंचाई वाले स्थान पर ले जाया जाए। ऐसा कुछ समय तक हुआ, पर बाढ़ का प्रकोप इतना अधिक बढ़ गया कि पानी ऊंचाई वाले स्थान तक पहुंचने लगा। बाढ़ से बचने के इंसान के सारे तरीके बेकार साबित हुए हैं। इसलिए अब यह कहा जा रहा है कि बाढ़ के साथ जीना सीखो। यह प्राकृतिक आपदा है, इसे तो आना ही है और आते ही रहना है।

फ्लड मैनेजमेंट पर 2007 से 2012 तक दस हजार करोड़ रुपये खर्च हो चुके

बारिश इंसान के जीवन से जुड़ी एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। देश के कई शहरों में पानी की समस्या है, कहीं बिजली की। इसके पीछे यही बारिश है। बारिश भले ही कम हो, पर इसका इस्तेमाल भरपूर हो तो कोई बात ही नहीं है कि देश में पानी की कमी हो। आज पानी का दुरुपयोग बहुत हो रहा है। बोरवेल के माध्यम से धरती की छाती छलनी हो गई है। इस कारण पानी की स्तर लगातार नीचे जा रहा है।

हैं। फिर भी अभी तक रत्तीभर सफलता प्राप्त नहीं हुई है। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने देश की सभी नदियों को जोड़ने का एक अभियान शुरू किया था। पर उनकी योजना पर पानी फिर गया। इस अभियान को लेकर उनकी मंशा यह थी कि जहां बाढ़ की स्थिति आती है, वहां का पानी सूखे स्थानों पर ले जाया जा सके।

ऐसा हो नहीं पाया और आज भी बाढ़ का पानी बेकार चला जाता है। न तो इसका उपयोग सिंचाई में हो पाता है और न ही इससे बिजली तैयार की जा सकती है। असम में आई बाढ़ का दृश्य देखने के लिए प्रधानमंत्री और कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी ने हेलीकॉप्टर पर सवार होकर तबाही का नजारा अपनी आंखों से देखा था। इसी से उपजी संवेदना के तहत 500 करोड़ का विशेष पैकेज असम को देने की घोषणा की गई।

नेताओं द्वारा हेलीकॉप्टर से बाढ़ का दृश्य देखने के बाद भी किसी की समझ में यह नहीं आया कि इस पानी का उपयोग किस तरह से किया जाए। कमर कसने का वक्त विगत 11 जुलाई को केंद्र सरकार द्वारा की गई हालात की उच्चस्तरीय समीक्षा का निष्कर्ष रहा कि कमजोर मानसून के खेती पर बुरे असर के बावजूद बाजार में चावल, गेहूं और चीनी की कमी नहीं होगी, लेकिन दालों और पशुओं के चारे की उपलब्धता पर जरूर असर पड़ेगा। इसका असर आम उपभोक्ताओं पर होगा, मगर मुसीबतों का सबसे बड़ा पहाड़ किसानों और कृषि आधारित जनसमुदायों पर टूटेगा।

दरअसल, बाजार का जो अंदाजा है, वह बारिश के अभी तक के अनुमान पर आधारित है। अगर आगे मानसून उम्मीद के मुताबिक नहीं रहा तो अनाज की उपलब्धता पर कहीं ज्यादा प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है। जाहिर है, यह सरकार के लिए कमर कसने का वक्त है। यह अच्छी बात है कि केंद्र एवं प्रभावित राज्यों की सरकारों ने समय रहते स्थिति का जायजा लिया है और सूखे से निपटने के लिए उपायों की योजना बनाई है। मसलन, केंद्र में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के जरिये दालों की उचित मूल्य पर आपूर्ति का प्रस्ताव विचाराधीन है। किसानों को ऐसी फसलों के लिए प्रोत्साहित करने की योजना भी बनाई गई है, जिसमें कम पानी की जरूरत पड़ती है। जहां अनाज की उम्मीद नहीं है, वहां किसानों को चारा उगाने की सलाह एवं इसमें सहायता देने की बात की गई है। महाराष्ट्र सरकार ने 2,885 करोड़ रुपये का पैकेज तैयार किया है, जिसके तहत किसानों को कर्ज राहत और कृषि संबंधी अन्य मदद दी जाएगी। जानकारों का कहना है कि पिछले साल सितंबर–अक्टूबर में भी कम बारिश हुई थी, जिससे अभी सूखे की हालत ज्यादा गंभीर हो गई है। जब अर्थव्यवस्था पहले से संकटग्रस्त हो तो उम्मीद मानसून से जोड़ी जाती है, लेकिन फिलहाल तो बादलों ने देश की उम्मीदों पर पानी फेर दिया है। □

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका सम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :–

संपादक

स्वदेशी पत्रिका

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

औद्योगिक श्रमिक हितों का सवाल

उदारीकरण के दौर में भारतीय व्यवस्था ने श्रम कानूनों को ढीला तो कर दिया, लेकिन किसी शख्स की जिंदगी की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने भर के लिए भी सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा के उपाय नहीं किए। नई आर्थिकी ने चमकदार दुनिया जरूर दिखाई है, लेकिन इसे नीतियों का असर कहें कि मजदूर वर्ग का खास भला नहीं हुआ है। रही–सही कसर लगातार बेकाबू हुई महंगाई ने पूरी कर दी है।

■ उमेश चतुर्वेदी

पहले मारुति के मानव संसाधन विभाग के महाप्रबंधक और फिर वुडलैंड कंपनी के उप महाप्रबंधक की हत्या की जितनी भी निंदा की जाए, कम है। लोकतांत्रिक समाज में ऐसे किसी भी काम को सही नहीं ठहराया जा सकता, लेकिन इन हत्याओं को सिर्फ और सिर्फ कानून और व्यवस्था का मसला बताया जाने लगा है। बताया जाने लगा है कि ऐसे कृत्यों से विदेशी निवेश प्रभावित होगा और उद्योग जगत में निराशा फैलेगी। नई आर्थिकी के जानकार तो यह भी बताने से नहीं हिचक रहे हैं कि इससे देश के औद्योगिक माहौल पर दीर्घकालीन उल्टा असर पड़ेगा।

अब तक अपने तुगलकी फरमानों के लिए कुख्यात रही हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की पंचायतों को भी इन घटनाओं ने झकझोर दिया है। हरियाणा के मानेसर के आसपास के गांवों की पंचायतों ने भी मारुति की घटना के खिलाफ कमर कस ली। उनका कहना है कि बाहरी इलाके से आए मजदूरों को अब मनमानी नहीं करने दी जाएगी। ये सारी बातें अपनी जगह सही हो सकती हैं।

अधिकारियों की हत्याओं को सही ठहराना भी शर्मनाक होगा। लेकिन इन चर्चाओं में एक तथ्य सिरे से गायब है और वह है देश में काम कर रहे लोगों के हक का सवाल। उनके रोजगार की गारंटी और इससे उपजे असुरक्षाबोध को कारगर तरीके से रोकने के उपायों की कमी। लेकिन इन पर किसी का ध्यान नहीं है।

अधिकारियों की हत्याओं को सही ठहराना भी शर्मनाक होगा। लेकिन इन चर्चाओं में एक तथ्य सिरे से गायब है और वह है देश में काम कर रहे लोगों के हक का सवाल। उनके रोजगार की गारंटी और इससे उपजे असुरक्षाबोध को कारगर तरीके से रोकने के उपायों की कमी। लेकिन इन पर किसी का ध्यान नहीं है। विदेशी निवेश और औद्योगीकरण के लिए सहूलियतें नई आर्थिकी के दौर में इस कदर प्रभावी हो गए हैं कि आम आदमी के हकों की आवाज को सिरे से किनारे कर दिया जा रहा है। जिसकी वजह से मानेसर या गाजियाबाद जैसी घटनाएं सामने आने लगी हैं।

नई आर्थिकी के खतरे विकासशील देशों में नई आर्थिकी के विस्तार की पहली शर्त है लाइसेंस राज और लाल फीताशाही को कम करना। अंग्रेजी शासनकाल से हमारे यहां भी ऐसे कई सारे नियम–कानून और बाध्यताएं रहीं कि बिना लाल फीताशाही के काम नहीं चल पाता था। निश्चित तौर पर इससे नागरिक अधिकारों का हनन तो होता ही था, विकास की गति में भी बाधाएं आती थीं। लेकिन आजाद भारत में रोजी–रोजगार को लेकर कम से कम दो

कानून ऐसे थे, जो कम से कम उस आम आदमी की जिंदगी को रोटी और कपड़े की दुश्वारियों से मुक्त करने की गारंटी देते थे। कांट्रैक्ट लेबर एक्ट और इंडस्ट्रियल डिस्प्युट एक्ट सिर्फ दो ऐसे कानून थे, जिनके जरिये किसी संगठन या संस्थान में नौकरी मिलने के बाद व्यक्ति एक हद तक असुरक्षाबोध से बच जाता था। लेकिन उदारीकरण के लिए विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के दबाव में इन दोनों कानूनों के साथ ही कई सारे दूसरे कानूनों में इतने बदलाव लाए गए और श्रम कानूनों को इतना ढीला किया गया कि आज किसी संस्था के लिए कर्मचारी को हटाना पहले की तुलना में कहीं ज्यादा आसान हो गया।

पहले की तुलना में अपने औद्योगिक इकाई को भी बंद करना आसान हो गया। अमेरिका और यूरोप के विकसित देशों में श्रम कानून इतने ढीले भी नहीं हैं। फिर वे देश अपने नागरिकों की सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा की गारंटी भी देते हैं। अगर कोई व्यक्ति वहां बेरोजगार होता है तो उसकी जिंदगी की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बेरोजगारी भत्ते का प्रावधान है।

पिछले दिनों भारत की एक सॉफ्टवेयर कंपनी को स्वीडन से अपने कामकाज का ज्यादातर हिस्सा इसलिए समेटना पड़ा, क्योंकि भारत से गए उसके कर्मचारी वहां वर्कोहलिक की तर्ज पर काम कर रहे थे, जबकि स्विडिश कानूनों के मुताबिक वहां किसी को भी हफ्ते में चालीस घंटे से ज्यादा काम करने की जरूरत नहीं है। स्वीडिश अधिकारियों ने भारतीय वर्कोहलिक संस्कृति पर रोक लगाने की कोशिश की तो भारतीय कंपनी ने वहां से भागने में ही भलाई समझी। उदारीकरण के दौर में भारतीय व्यवस्था ने श्रम कानूनों को ढीला तो कर दिया, लेकिन किसी शख्स की जिंदगी की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने भर के लिए भी सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा के उपाय नहीं किए। नई आर्थिकी ने चमकदार दुनिया जरूर दिखाई है, लेकिन इसे नीतियों का असर कहें कि मजदूर वर्ग का खास भला नहीं हुआ है। रही–सही कसर लगातार बेकाबू हुई महंगाई ने पूरी कर दी है। फिर आर्थिक सुधार के साथ शुरू हुई छंटनी और दूसरी दुश्वारियों का ही असर है कि आज का कर्मचारी असुरक्षाबोध से कहीं ज्यादा ग्रस्त है। मनोविज्ञानी भी मानते हैं कि पहले यह असुरक्षाबोध लाचारगी की तरफ बढ़ने को मजबूर करता है और आखिर में जब कहीं कोई दूसरी राह नजर नहीं आती तो व्यक्ति हिंसावादी हो जाता है। बरसों से जारी असुरक्षाबोध का ही असर है कि अब अधिकारियों पर हमले बढ़ रहे हैं।

विगत 18 जुलाई को मारुति के

कांट्रैक्ट लेबर एक्ट और इंडस्ट्रियल डिस्प्युट एक्ट सिर्फ दो ऐसे कानून थे, जिनके जरिये किसी संगठन या संस्थान में नौकरी मिलने के बाद व्यक्ति एक हद तक असुरक्षाबोध से बच जाता था। लेकिन उदारीकरण के लिए विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के दबाव में इन दोनों कानूनों के साथ ही कई सारे दूसरे कानूनों में इतने बदलाव लाए गए और श्रम कानूनों को इतना ढीला किया गया कि आज किसी संस्था के लिए कर्मचारी को हटाना पहले की तुलना में कहीं ज्यादा आसान हो गया। पहले की तुलना में अपने औद्योगिक इकाई को भी बंद करना आसान हो गया। अमेरिका और यूरोप के विकसित देशों में श्रम कानून इतने ढीले भी नहीं हैं। फिर वे देश अपने नागरिकों की सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा की गारंटी भी देते हैं। अगर कोई व्यक्ति वहां बेरोजगार होता है तो उसकी जिंदगी की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बेरोजगारी भत्ते का प्रावधान है।

आर्थिक सुधार के साथ शुरू हुई छंटनी और दूसरी दुश्वारियों का ही असर है कि आज का कर्मचारी असुरक्षाबोध से कहीं ज्यादा ग्रस्त है। मनोविज्ञानी भी मानते हैं कि पहले यह असुरक्षाबोध लाचारगी की तरफ बढ़ने को मजबूर करता है और आखिर में जब कहीं कोई दूसरी राह नजर नहीं आती तो व्यक्ति हिंसावादी हो जाता है। बरसों से जारी असुरक्षाबोध का ही असर है कि अब अधिकारियों पर हमले बढ़ रहे हैं।

महाप्रबंधक (एचआर) अवनीश देव की हत्या हो या फिर 20 जुलाई को वुडलैंड के उप महाप्रबंधक नितिन शर्मा की हत्या की घटना, इनके पीछे भी कहीं न कहीं यही मानसिकता काम कर रही है। इसके पहले 2008 में गाजियाबाद इलाके में ही इटली की कंपनी ग्रेजियानो के महाप्रबंधक एलके चौधरी की हत्या कर दी गई।

इसी तरह 13 नवंबर 2010 को साहिबाबाद की एलायट निप्पॉन कंपनी के महाप्रबंधक योगेंद्र चौधरी की हत्या मजदूरों ने कर दी। खुद मारुति में ही 2011 में 33 दिनों तक हड़ताल हो चुकी है। रिको कंपनी में 2009 में 50 दिनों तक हड़ताल चली। 2004 में होंडा कंपनी में पांच दिनों तक हिंसक हड़ताल हुई। उस दौरान होंडा के कर्मचारियों की जिस तरह पुलिस ने पिटाई की थी, उसे आज भी याद करके सिहरन होती है। तब देश के प्रबुद्ध समझे जाने वाले लोगों ने इसका खास विरोध नहीं जताया था। रोजगार की अनिश्चितता हकीकत तो यह है कि अनिश्चित भविष्य का दर्द और रोजगार जाने के बाद परिवार पालने की आशंकाएं रोजाना रिस–रिसकर कम से कम देश के कामगार वर्ग के अंदर नासूर की तरह बढ़ती जा रही हैं। इसका दुष्प्रभाव ही है कि जब प्रबंधन से उन्हें खतरे का अहसास होता है तो वे बेकाबू हो जाते हैं और प्रबंधन की जान पर बन आती है। नई आर्थिकी ने एक और काम किया है। कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉस्बिलिटी की आजकल बात बहुत की जा रही है। कॉरपोरेट के लिए सामाजिक दायित्व पूरे करने का कानूनी प्रावधान भी किया गया है, लेकिन हकीकत में ज्यादातर कंपनियां इसे रस्मी तौर पर निभाती हैं।

नई आर्थिकी ने प्रबंधन के नैतिक पक्ष को कमजोर किया है। नई आर्थिकी में फायदा ही सबकुछ हो गया है, मानवीय मूल्यों की कोई जगह नहीं है। एक यह भी बड़ी वजह है कि प्रबंधन के पास नैतिक बल नहीं है। नैतिक बल नहीं होने की वजह से वह मजदूरों का वैसे सामना नहीं कर पाता, जैसा कभी सामंती सत्ताएं भी कर पाती थीं।

सैयद नजमुल रजा रिजवी की पुस्तक 18वीं सदी के जमींदार में कई बार जमींदारों की नैतिक सत्ताओं का जिक्र आता है। इस पुस्तक के मुताबिक उस दौर के जमींदार निश्चित तौर पर सामंती थे, लेकिन वे इस बात की गारंटी जरूर लेते थे कि उसके इलाके की रियाया भूख से नहीं मरे। सिर्फ इतनी–सी गारंटी ही उन्हें एक नैतिक आधार मुहैया कराती थी।

क्या नई आर्थिकी के दौर का ज्यादातर प्रबंधन इस तरह के नैतिक आधार हासिल करने का दावा कर सकता है। निश्चित तौर पर इसका जवाब ना में है। लिहाजा, कामगार–प्रबंधन विवाद के बीच सिर्फ कानून–व्यवस्था का सवाल ढूंढ़ने से काम नहीं चलने वाला है। वैसे भी नई आर्थिकी ने असमान विकास का जो ढांचा मुहैया कराया है, उसने असंतोष और कई सारे सवालों को जन्म दिया है। इसलिए अब वक्त आ गया है कि अपने श्रम कानूनों की समीक्षा की जाए। भारतीय समाज की जरूरत के मुताबिक सामाजिक सुरक्षा के जमीनी उपाय तलाशे जाएं। कॉरपोरेट को नैतिक आधार मुहैया कराने की राह खोजी जाए। □

भारत की तीर्थ परम्परा पर खतरा और समाधान

दुनिया की सर्वश्रेष्ठ जल प्रवाह वाली नदी गंगा का जल जगह–जगह पर सड़ा दिया गया है। अब टिहरी बांध के नीचे अलगी का हरा जल ही आता है। भगीरथी को टिहरी बांध ने मार दिया। अलकनन्दा को श्रीनगर बांध मार देगा। यदि ऐसा ही रहा तो गंगा के सारे तीर्थ नष्ट हो जायेंगे। आज तीर्थों पर प्रदूषण, अतिक्रमण और पंडों का तीर्थ–शोषण करने का लालच ही सबसे बड़ा संकट है। इसका समाधान तीर्थानन्द से ही निकलेगा। उसी में नया प्रबंधन भी खड़ा होगा।

■ राजेन्द्र सिंह

सतयुग में जहां सत्य का बोध होता था, उसे ही तीर्थ कहा जाता था। उस स्थान पर रहने वाले ऋषि, समाज को सत्य का अहसास और आभास कराकर मन के भ्रम को दूर करते थे। वही स्थान आगे चलकर लोगों के मन का तीर्थ होता था। ऐसे स्थान निर्मित करने वाले तीर्थांकर (शंकराचार्य) कहे जाते थे। ये शंकराचार्य जी (सनातनी तीर्थांकर) जहां जाते और रहते थे, वही स्थान तीर्थ बन जाता था। ये जहां भी जाते हैं, जब तक भी रहते हैं, वह स्थान सनातनियों का तीर्थ बना रहता है।

''सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। सर्व भूतया तीर्थं, तीर्थं मार्जवमेव च।।''

सत्य तीर्थ है। जिस स्थान पर जाकर लोगों के मन में सत्य का भाव आये। दया भाव और क्षमा भाव बस जाये, कामेन्द्रियों पर नियंत्रण और मन में समरसता आती हो, तथा जहां रहकर ऐसे ही मन स्थिति के सकारात्मक बदलाव का भाव आता हो, वह भाव ही किसी भी स्थान को तीर्थ बनाता है। जहां जाकर विद्वानों और गरीबों को दान देने का भाव, मन का संयम, संतोष और ब्रह्मचर्य का भाव जब मन में पैदा होने लगे तथा वचनों में सत्य ही प्रिय हो जाये और मन में शुद्ध भाव, दान, जप–तप, शास्त्र–श्रवण और स्वाध्याय बढ़ने लगे, वे स्थान ही सतयुग से द्वापर काल तक के तीर्थ कहलाते हैं।

कलयुग के तीर्थों में पूजा–पाठ, स्नान, शास्त्र–श्रवण, वाक्–पटुता का ही ज्यादा दर्शन होता है। भारतीय संस्कृति के सभी तीर्थ नदियों के किनारे और समुद्र के संगम पर, पर्वतों में नदियों के उद्गम पर और पहाड़ों के अरण्यों में ही दिखाई देते हैं।

हम भारत की तीर्थ परम्परा का इतिहास जानें तो प्रकृति को प्यार करने वाला प्रत्येक ऋषि जीवित और जाग्रत तीर्थ होता था। उन्हीं की उपस्थिति में, उन्हीं के प्रति श्रद्धा–भाव, रखकर समाज पत्थरों को गढ़कर अथवा वहां के नैसर्गिक रूप को ही तीर्थ मान लेता था।

भारत में तीर्थ प्रेम, विश्वास, श्रद्धा, आस्था, निष्ठा और भक्ति–भाव से ही बनता है। किसी भी स्थान के प्रति जब हमें प्रेम होता है, तो हम उसके विषय में बातचीत करना शुरू करते हैं। बातचीत में जब स्थान या व्यक्ति के प्रति विश्वास जग जाता है, तो हम वहां बार–बार जाना शुरू करते हैं। वहां जाकर हमारे मन में जब उस स्थान के प्रति श्रद्धा बनती और जगती है तो हमारा मन, मानस और बुद्धि उस व्यक्ति और स्थान के प्रति आस्थावान बन जाता है। आस्था से निष्ठा भाव जन्म लेता है, और हम निष्ठावान् हो जाते हैं। निष्ठा से ही अंत में हम में भक्ति–भाव पैदा होता है। भक्ति–भाव में भ्रम नहीं बचता, सवाल नहीं उठते, बस वही हमारा तीर्थ बन जाता है। वहां जाना और मिलना ऊर्जादायी बन जाता है। ऊर्जा पाने के लिए ही हम तीर्थ यात्राएं करते हैं।

प्रेम से पूजा और उपासना शुरू होती है। फिर धीरे–धीरे हमारा धीरज, संयम और हमारे मन की समरसता हमारे मन में अपने तीर्थ के प्रति विश्वास पैदा करते हैं। विश्वास हमारे अन्दर सुषुप्त श्रद्धा को जगाता है। जब हमारी श्रद्धा जगती है तो पत्थर भी देव बन जाते हैं। हमारे यहां एक लोक कहावत है; ''मानो तो देव, नहीं तो पत्थर है।'' श्रद्धा से ही हम किसी को देव मानते हैं। जब यही श्रद्धा हमारी आस्था बनती है, तो हम किसी को देव मानने लगते हैं।

एक काल के बाद मान्यता प्राप्त देव के प्रति हमारी आस्था ही निष्ठा में बदल जाती है। हमारी निष्ठा हमें 'देव–निष्ठ' बना देती है। 'देव–निष्ठ' होने के बाद हमारे मन के सवाल मर जाते हैं और हमारे मन में भक्ति–भाव जाग्रत हो जाता है। यह प्रक्रिया व्यक्ति में चलती और निर्मित होती रहती है। यही प्रक्रिया किसी क्षेत्र, स्थान या व्यक्ति को तीर्थ बनाती है। यह प्रक्रिया तीर्थंकर बनाती है, और तीर्थंकर बनने वाले व्यक्ति पर यह ज्यादा लागू होती है। तीर्थ स्थान तो तीर्थंकर व्यक्ति से ही बनते हैं। यह प्रक्रिया प्रत्येक तीर्थ स्थान पर लागू होती है।

भारत के तीर्थ इसी भाव प्रक्रिया से बने हैं। यूं तो आज भारत में हर पंथ और समुदाय के विविध तीर्थ हैं। इन पर आज करोड़ों लोग तीर्थाटन करने जाते हैं। इन्हें हम अपनी बोलचाल की भाषा में श्रद्धालु कहते हैं। श्रद्धालुओं की श्रद्धा से ही पहाड़, पत्थर, नदी, मन्दिर अथवा कोई भी स्थान तीर्थ बन जाता है।

भारत में यूं तो सभी धर्मों, पंथों, समुदायों के भिन्न–भिन्न तीर्थ हैं। उनके रख–रखाव भी भिन्न है। सिक्खों व जैनों ने सफाई की अच्छी व्यवस्था कर रखी है। हम सनातनी अपने तीर्थों के प्रति बेफिक्र होकर उन्हें गंदा करते हैं। दक्षिण के सनातनी तो अपने मंदिरों की सफाई रखते हैं।

दुनिया की सबसे पवित्रतम् नदी गंगा है। इसके किनारे कदम–कदम पर तीर्थ प्रकृट हुए यज्ञ स्थल (प्रयाग), मन्दिर और घाट बहुत हैं। प्राचीन काल में इन सबके रख–रखाव की बहुत ही व्यवस्था तरीके से जिम्मेदारी विकेन्द्रित और विभाजित थी। हिमालय के बद्रीनाथ मंदिर पर केरल का पुजारी पूजा करता है। भारत की अखण्डता और एकता को कायम रखने के लिए भारतीय तीर्थ और परम्परा का बड़ा योगदान रहा है। 'चार धाम' हमारे सबसे बड़े तीर्थ हैं। हिमालय के उत्तर भारत में बद्रीनाथ, पश्चिम में द्वारका, पूर्व में जगन्नाथपुरी और दक्षिण में रामेश्वरम्। ये चारों तीर्थ हमारी सनातनी शंकराचार्य परम्परा से शुरू हुए थे। यही परम्परा यहां आज भी जाग्रत है।

जैन धर्म के भी बहुत सारे तीर्थ स्थल हैं, और सिक्ख धर्म के भी तीर्थ हैं। जैन, सिक्ख और बौद्ध–धर्म ये तीनों ही हिन्दू धर्म से जन्मे और बने हैं; लेकिन इनके तीर्थ स्थान अब अलग–अलग हैं। सभी ने अपने तीर्थों के लिए अलग–अलग तरीके से पूजा और प्रबंधन की व्यवस्था की है। इनका सार इन पंक्तियों में है।

''जोई–जोई करौं, सोई–सोई पूजा।
जहां–जहां जांऊ, सोई–सोई तीरथ।।''

मां–बाप, गुरु और समाज तीर्थ हैं। हमारी संस्कृति में युवा श्रवण कुमार अपने माता–पिता को अपना सबसे बड़ा तीर्थ मानते हैं; जो आज की युवा पीढ़ी के लिए प्रेरक बन सकते हैं। बुद्धि के देवता गणेश पूरे ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करने की बजाय अपने माता–पिता पार्वती और शिव की परिक्रमा करके अपने तीर्थ की इतिश्री मान लेते हैं।

भारत में तीर्थ, व्यक्ति का सच्चा और श्रद्धालु मन ही है। शास्त्रीय परिभाषाओं में तीर्थ पहाड़, पत्थर, नदी, मंदिर और वृक्ष भी होते हैं। मूलतः तो यह व्यक्ति के अन्दर ही उपस्थित होता है। सनातन धर्मी कहते हैं कि सत्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह, प्राणियों पर दया, प्रिय वचन, ज्ञान और तप ही सप्तक तीर्थ हैं। यूं तो कहीं भी मनुष्य के अन्दर का सत्य तीर्थानुभूति करा देता है; ऐसी अनुभूति कराने वाले ही तो तीर्थंकर कहलाते थे। आज चारों पीठों के शंकराचार्य इस प्रकार की अनुभूति कराते हैं।

भ्रम के भय से पार कराने और करने वाले ही तीर्थांकर होते हैं। अब तीर्थंकर आधुनिक तीर्थों पर कम रहते हैं। अब तो पत्थर के मंदिर ही तीर्थ बन रहे हैं। इन्हें बचाकर पहले जैसे बनाकर रखना बड़ी चुनौती है। इसे 21वीं सदी के दूसरे दशक में अब स्वीकारने की आवश्यकता है।

भ्रष्टाचार हमारी तीर्थ परम्परा को भी निगल जायेगा। भ्रष्ट राजा ही अपनी जनता को भी धर्म–भ्रष्ट कर देता है। तीर्थ परम्परा भी धूमिल होकर गिर जाती है। क्योंकि अब यह व्यक्तियों में कम पत्थरों और पानी प्रवाह में अधिक बची है। पत्थर घूसर और पानी प्रदूषित है। यही तीर्थ परम्परा को खतरा है।

दुनिया की सर्वश्रेष्ठ जल प्रवाह वाली नदी गंगा का जल जगह–जगह पर सड़ा दिया गया है। अब टिहरी बांध के नीचे अलगी का हरा जल ही आता है। भगीरथी को टिहरी बांध ने मार दिया। अलकनन्दा को श्रीनगर बांध मार देगा। यदि ऐसा ही रहा तो गंगा के सारे तीर्थ नष्ट हो जायेंगे। आज तीर्थों पर प्रदूषण, अतिक्रमण और पंडों का तीर्थ–शोषण करने का लालच ही सबसे बड़ा संकट है। इसका समाधान तीर्थानन्द से ही निकलेगा। उसी में नया प्रबंधन भी खड़ा होगा। □

13वें राष्ट्रपति भ्रष्टाचार व आतंकवाद को भारत की मुख्य समस्या समझते हैं!

महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी अगर कांग्रेस, भाजपा अन्य सभी राजनीतिक दलों सहित में आतंकवाद व भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए दृढ इच्छा शक्ति जागृत कर पाये तो वे देश के अब तक के सबसे दृढ, मजबूत व सफल राष्ट्रपति बनने का ऐतिहासिक गौरव प्राप्त कर सकेगें। देश को विश्व में एक गौरवशाली स्थान दिलवाने में उनका अभूतपूर्व सहयोग कहलाया जाएगा।

■ **डॉ. सूर्य प्रकाश अग्रवाल**

भारत गणतंत्र के 13वें राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी को 25 जुलाई 2012 को देष की सर्वोच्च अदालत के मुख्य न्यायमूर्ति एस. एच. कपाडिया ने देष के गणमान्य सर्वोच्च लोगों के सम्मुख देष के राष्ट्रपति पद के लिए संसद के केन्द्रीय कक्ष में शपथ दिला दी। महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने यह तो चुनाव जीतने के बाद ही घोषित कर दिया था कि राष्ट्रपति किसी दल का नहीं होता है, वह देश का होता परन्तु जिस प्रकार 19 जुलाई 2012 को हुए चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के समर्थित प्रत्याशी पी. ए. संगमा के मुकाबले उन्हें भारी बहुमत मिला उसको देख कर नहीं लगता है कि वे राष्ट्रपति निर्वाचित होने में शामिल रहे मुख्य राजनीतिक दलों का अहसान उतार पायेगें।

संसद के केन्द्रीय कक्ष में अपने प्रथम संबोधन में महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने स्पष्ट किया कि आंतकवाद चौथे विश्व युद्ध के समान है और यह बला अपना शैतानी सिर विष्व में किसी भी स्थान पर उठा सकती है। अभी युद्ध का युग समाप्त नहीं हुआ है। तृतीय विष्व युद्ध शीत युद्ध था और 1990 के शुरुआत में यह समाप्त हो गया था परन्तु उस समय एषिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका में माहौल गर्म था और अब विष्व में चौथा युद्ध आतंकवाद से हो रहा है। राष्ट्रपति की मुख्य जिम्मेदारी भारत देष के संविधान के सरंक्षक की होती है। किसी भी जनसेवक के लिए देश का प्रथम नागरिक अर्थात राष्ट्रपति बनना सबसे बडा पुरुस्कार (ईनाम) होता है। दूसरे देशों को आतंकवाद की जघन्यता तथा उसके खतरनाक परिणामों के बारे में बाद में पता लगा जबकि भारत को इस युद्ध का सामना उससे कहीं पहले से करना पड रहा है। भ्रष्टाचार की चर्चा करते हुए महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने कहा कभी कभी पद का भार व्यक्ति के सपनों पर भारी पड जाता है। भ्रष्टाचार एक ऐसी बुराई है जो देश की मनोदशा में निराशा भर सकती है और देश की प्रगति को बाधित कर सकती है। हमारा विकास वास्तविक लगे इसके लिए जरुरी है कि देश के गरीब से गरीब व्यक्ति को यह महसूस हो कि वह उभरते भारत की कहानी का हिस्सा है। देष में गरीबी के अभिशाप को समाप्त करना है और युवाओं के लिए ऐसे अवसर पैदा करना है कि वे हमारे भारत देश को तीव्र गति से आगे लेकर जाऐं। भाषण का अंत बहुत अच्छे तरीके से स्वामी विवेकानंद के विचारों से किया कि भारत का उदय होगा, शरीर की ताकत से नहीं बल्कि मन की ताकत से। विध्वंस के ध्वज से नहीं बल्कि शांति और प्रेम के ध्वज से।

महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी की अर्थव्यवस्था व विदेषी मामलों पर बहुत पैनी नजर रहती है। वे देर रात तक अपने कार्यालय में बैठ कर मेहनत करते है। 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिंह राव ने उन्हें विदेषमंत्री बनाने के साथ ही योजना आयोग का उपाध्यक्ष भी बनाया था। डा. मनमोहन सिंह की सरकार में वे रक्षा मंत्री, विदेश मंत्री और वित्त मंत्री के पदों पर रहे। 1969 में सबसे पहली बार

अन्ना हजारे व बाबा रामदेव भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए जनलोकपाल विधयेक पास कराने व विदेशों में जमा काला धन जो लाखों करोड़ रुपये की अकूत धन राशि के रूप में है, को भारत में वापस लाने की मांग कर रहे है। वे कोई गलत मांग व गलत बात तो कर नहीं रहे है। उनको महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी जी के द्वारा सहानुभूतिपूर्वक सुना जाना चाहिए और सरकार को आंतकवाद व भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए मजबूर किया जाना चाहिए।

राज्यसभा के लिए चुने गये और सियासी जिंदगी में करीब 35 वर्ष के बाद ही वे लोकसभा जा पाये। 2004 में वे पहली बार पष्चिम बंगाल के जंगीपुर संसदीय सीट से चुने गये। 2009 में भी वे लोकसभा पहुँचे। उन्हें राजनीतिक संकट मोचक के रुप में कांग्रेस में मान सम्मान प्राप्त था। वे प्रषासक और दलों की सीमा के पार अपनी स्वीकार्यता के लिए भी प्रसिद्ध रहे है।

देश के प्रथम नागरिक बनने के बाद महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी की देश के लिए चिन्ता जायज है और उनके प्रथम संबोधन में आंतकवाद व भ्रष्टाचार देष की मुख्य समस्या के रूप में उभर कर सामने आये।

यह अजब संयोग रहा कि जब महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी पद की शपथ ग्रहण कर रहे थे लगभग उसी समय भ्रष्टाचार के खात्मे के लिए लडाई लड़ रहे अन्ना हजारे व उनकी टीम का दिल्ली में अनशन भी 25 जुलाई 2012 को प्रारंभ हो गया। जनलोकपाल विधेयक का समर्थन करते हुए अन्ना हजारे ने आंदोलन की शुरुआत करते हुए कहा कि सरकार को लोकपाल लाना होगा, नहीं तो जाना होगा। उन्होंने भ्रष्टाचार के मुददे पर कांग्रेस व भारतीय जनता पार्टी पर सांठगांठ का आरोप लगाया और कहा कि दोनों एक दूसरे को बचा रहे है।

अन्ना हजारे ने आगे कहा कि प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह, पी. चिदम्बरम्, वीरभद्र सिंह, व ए. राजा सहित 14 नेताओं को विभिन्न घोटालों में लिप्त होने पर भी संरक्षण दे रहे है। अन्ना हजारे का मानना है कि यदि लोकपाल विधेयक समय पर आ गया होता तो पूर्व वित्त मंत्री महामहिम राष्ट्रपति जैसे गारिमापूर्ण शीर्ष पद पर नहीं पहुँच पाते। शीर्ष पदों पर बैठे नेताओं पर भ्रष्टचार का नशा छा गया है।

आज देश में कोयला ब्लाक आबंटन घोटाला, चावल निर्यात घोटाला, पनडुब्बी सौदा घोटाला, बार रुम लाक मामला, सेबी से जुड़ी अनियमितताएं, टू जी स्पेक्ट्रम घोटाला, राष्ट्र मंडल खेल घोटाला, आदर्श हाउसिंग सोसाइटी घोटाला आदि दर्जन भर से ज्यादा घोटालों में देश के नामी बड़े बड़े नेताओं और मंत्रियों के नाम जुड गये है। इन सब की निष्पक्ष जांच होनी ही चाहिए।

आज देष में कोयला ब्लाक आबंटन घोटाला, चावल निर्यात घोटाला, पनडुब्बी सौदा घोटाला, बार रुम लाक मामला, सेबी से जुड़ी अनियमितताएं, टू जी स्पेक्ट्रम घोटाला, राष्ट्र मंडल खेल घोटाला, आदर्श हाउसिंग सोसाइटी घोटाला आदि दर्जन भर से ज्यादा घोटालों में देष के नामी बड़े बड़े नेताओं और मंत्रियों के नाम जुड गये है। इन सब की निष्पक्ष जांच होनी ही चाहिए।

महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी के सामने जहां अफजल गुरु जैसे सजायाफ्ता आंतकवादी को फांसी देने की फाईल पड़ी हुई है वहीं उन्हें मुम्बई हमलों में कसाब के मामले पर भी विचार करना पड सकता है। देष में आंतकवाद से निपटने के लिए जाति, धर्म, सम्प्रदाय, मजहब, क्षेत्र देखे बिना कठोर निर्णय लेने पडेगें।

महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी को कांग्रेस व अन्य राजनीतिक दलों में आंतकवाद व भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति जागृत करनी होगी व भ्रष्टाचार के मुददे पर भी सभी राजनीतिक दलों को एकजुट करना होगा। यह सभी जानते हैं कि भारत जैसे गणतंत्र का राष्ट्रपति संविधान में बंधा होता है तथा मात्र कुछ ही मामलों को छोड़ कर अन्य मामलों में स्वतंत्र निर्णय लेने में वह सक्षम नहीं होता है, प्रधानमंत्री की सलाह पर ही राष्ट्रपति कार्य करता है।

परन्तु प्रधानमंत्री व उनके कांग्रेस दल ने उनको राष्ट्रपति बनवाया है अतः उनका अहसान भी महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी को उतारना पड़ सकता हैं परन्तु फिर भी महामहिम राष्ट्रपति प्रधानमंत्री को दिषा–निर्देष देकर अपनी बात को मनवा भी सकता है। यदि आंतकवाद व भ्रष्टाचार पर कम समय में ही अंकुश लग सका तो देश का बहुत बड़ा कल्याण निश्चित है।

अन्ना हजारे व बाबा रामदेव भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए जनलोकपाल विधयेक पास कराने व विदेषों में जमा काला धन जो लाखों करोड़ रुपये की अकूत धन राशि के रूप में है, को भारत में वापस लाने की मांग कर रहे है। वे कोई गलत मांग व गलत बात तो कर नहीं रहे है। उनको महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी जी के द्वारा सहानुभूतिपूर्वक सुना जाना चाहिए और सरकार को आंतकवाद व भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए मजबूर किया जाना चाहिए।

महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी अगर कांग्रेस, भाजपा अन्य सभी राजनीतिक सहित दलों में आंतकवाद व भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए दृढ इच्छा शक्ति जागृत कर पाये तो वे देश के अब तक के सबसे दृढ, मजबूत व सफल राष्ट्रपति बनने का ऐतिहासिक गौरव प्राप्त कर सकेगें। देश को विष्व में एक गौरवशाली स्थान दिलवाने में उनका अभूतपूर्व सहयोग कहलाया जाएगा। □

राष्ट्रीय विचार वर्ग 13,14, 15 जुलाई 2012, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

स्वदेशी का मूल उद्देश्य देश की आर्थिक आजादी को प्राप्त करना है। आज दुनिया से समाजवाद और साम्यवाद समाप्त हो रहा है। इसलिये स्वदेशी जागरण मंच का विकास पथ केवल इस देश का नहीं दुनिया के कल्याण के लिये है। – अरुण ओझा

स्वदेशी जागरण मंच के पश्चिम क्षेत्रीय राष्ट्रीय विचार वर्ग का आयोजन दिनांक 13,14,15 जुलाई–2012 को ग्वालियर में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मध्यप्रदेश सहित गुजरात, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ, प्रांत के 135 से अधिक कार्यकर्त्ताओं ने भाग लिया। विचार के उद्घाटन सत्र में प्रख्यात चितंक माननीय के. एन. गोविन्दाचार्य, पूर्व सांसद श्री महेश शर्मा, राष्ट्रीय विचार मंडल प्रमुख श्री अश्विनी महाजन भी उपस्थित थे।

उद्घाटन सत्र में श्री गोविन्दाचार्य ने स्वदेशी का अर्थ बताते हुए कहा कि यह केवल आर्थिक ताने–बाने से नहीं, बल्कि सभ्यता के आदर्शों से है। उन्होंने कहा कि हमें ग्लोबलाइजेशन को अपने नजरिये से देखना होगा। यूरोपीय लोगों के लिए वैश्वीकरण, प्रतिस्पर्धा और व्यापार तक सीमित है। लेकिन भारतीयों के लिये सेवा और सहकार है।

एकात्मक मानववाद विषय पर पूर्व सांसद महेश शर्मा जी ने बोलते हुए कहा

स्वदेशी जागरण मंच अंग्रेजों के द्वारा स्थापित बौद्धिक गुलामी और देश की आर्थिक आजादी का दूसरा आंदोलन है। आज भारत की साख गिरी है। मानवता चौराहे पर खड़ी है। समाजवाद, साम्यवाद, पूंजीवादी आदि अनेक विचार धारायें समाप्त हो रही है। ऐसे कठिन समय में स्वदेशी जागरण मंच का विकास पथ देश ही नहीं दुनिया का मार्ग प्रशस्त करेगा।

कि स्वदेशी विदेशी शब्द का प्रतिकार शब्द है। भारत की आजादी के आंदोलन में स्वदेशी का अर्थ आर्थिक था। विदेशी उत्पाद का बहिष्कार हुआ, विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। उस समय स्वदेशी एक प्रांसगिक शब्द नहीं अवधारणा थी। क्योंकि संसद और उसके सदस्य स्वदेशी थे। परिणाम स्वरूप आंदोलन समाप्त हो गया। लेकिन आजादी के 40 वर्ष बाद 1980 में पुनः ग्लोबलाइजेशन के तहत हमला हुआ। इसका सामना करने के लिये दत्तोपंत ठेंगड़ी जी के नेतृत्व में स्वदेशी जागरण मंच का उदय हुआ।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता कर रहे क्षेत्रीय संयोजक श्री जगत नारायण सिंह जी ने कहा कि आज हमें संवाद, सहकार का मूल मंत्र मिला। जिन पर हम आगामी तीन दिनों तक चिंतन और मनन

करेंगे। ताकि इसकी स्वीकारता को संपूर्ण देश एवं समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाया जा सके।

वर्ग के दूसरे दिन पहले सत्र में कृषि वैज्ञानिक डॉ. संकेत ठाकुर और मंच के उत्तर क्षेत्र संगठक श्री चंद्रमोहन जी ने कृषि और किसानो की बदहाली एवं बेहाली की जिम्मेदार बहुराष्ट्रीय कंपनियों को ठहराते हुये कि कहा कि सरकारों और नौकरशाहों को प्रभावित कर ये कंपनियां अपने पक्ष में निर्णय लेती है। और किसान कर्जदार होकर आत्महत्या करते है।

उन्होंने कहा कि विषैले कीटनाशकों एवं खाद से भारतीय जन का स्वास्थ चौपट हो रहा है। स्वदेशी में इन समस्याओं का हल उन्होंने जैविक कृषि को बताया।

इस वर्ग में दूसरे दिन मंच के अखिल भारतीय संगठक श्री कश्मीरी लाल जी ने देश एवं विदेश में सार्वभौमिक स्वदेशी घटनाक्रमों एवं उन घटनाओं से संबंधित व्यक्तियों के बारे में विस्तार से जानकारी प्रदान की। उन्होंने कहा कि जागृत व्यक्तित्व अपने स्वतः स्फूर्त प्रयासों से युग के अनुकूल स्वदेशी भाव को जीवन और समाज के प्रत्येक पहलू में स्थापित करने के आदर्श उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है।

वर्ग के ही दूसरे, दिन राष्ट्रीय विचार मंडल प्रमुख श्री अश्विनी महाजन ने पेटेंट कानून में परिवर्तन से उत्पन्न दुष्प्रभावों की चर्चा करते हुये आयात–निर्यात को तय करने का अधिकार भारत के पास होने की आवश्यकता पर जोर दिया। मुद्रा के अवमूल्यन के वास्तविक कारणों और सत्यता पर उन्होंने सरकार की आंकड़ों की साजिश पर विस्तार से चर्चा की एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के षड़यंत्र से आगाह किया।

चीन की चुनौती विषय पर अपने विचार रखते हुए मध्य प्रदेश के सह–संयोजक राघवेन्द्रप्रताप सिंह चंदेले ने आगाह किया कि देश की समृद्धि में योगदान देने वाले अनेक उद्योग जैसे खिलौना, इलेक्ट्रॉनिक्स, घरेलू उपकरण से लेकर टेलीफोन एक्सचेंज एवं जनरेटर तक चीन के आयात होने से देश के उद्योग व्यापार चौपट होकर अनेक व्यापारी सड़क पर आ जाएंगे। चीन ने चारों ओर से देष को घेर लिया है। उसकी माओवादी गतिविधियों को बढ़ावा देने से भारत की संप्रभुता, एकता एवं अखण्ड़ता पर खतरा मण्डराता रहता है।

वर्ग के तीसरे और अंतिम दिन राष्ट्रीय जलनीति पर श्री अजय पत्की जी ने अपने विचार रखे। समापन सत्र को मंच के राष्ट्रीय संयोजक श्री अरूण ओझा जी ने कहा कि स्वदेशी का मूल उद्देश्य देश की आर्थिक आजादी को प्राप्त करना है। आज दुनिया से समाजवाद और साम्यवाद समाप्त हो रहा है। इसलिए स्वदेशी जागरण मंच का विकास पथ केवल इस देश का नहीं दुनिया के कल्याण के लिये है।

श्री ओझा ने उद्घाटित किया कि स्वदेशी जागरण मंच अंग्रेजों के द्वारा स्थापित बौद्धिक गुलामी और देश की आर्थिक आजादी का दूसरा आंदोलन है। आज भारत की साख गिरी है। मानवता चौराहे पर खड़ी है। समाजवाद, साम्यवाद, पूंजीवादी आदि अनेक विचार धारायें समाप्त हो रही है।

ऐसे कठिन समय में स्वदेशी जागरण मंच का विकास पथ देश ही नहीं दुनिया का मार्ग प्रशस्त करेगा।

वर्ग के उद्घाटन व समापन सत्रों में शहर के बुद्धिजीवों, गणमान्य नागरिकों सहित बड़ी संख्या में लोग उपस्थित रहे। वर्ग के सत्रों की विषेशता यह रही कि इसमें विभिन्न विषयों पर शहर के भी विषय विषेशज्ञों को आंमत्रित किया गया था।

इस अवसर पर मंच के राष्ट्रीय संयोजक श्री अरूण ओझा, अखिल भारतीय संगठक श्री कश्मीरी लाल, क्षेत्रीय संयोजक श्री जगत नारायण सिंह वर्ग संयोजक श्री धमेन्द्र भदौरिया, वर्ग सह संयोजक श्री नरेन्द्रपाल सिंह भदौरिया, श्री शिरोमणि दुबे, श्री विजय कृष्ण योगी, श्री राम गोयल, श्रीकांत बुधोलिया समेत कई पदाधिकारी व कार्यकर्त्ता उपस्थित थे। □

'स्वदेशी वाले' इस विचार को मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि विकास का पश्चिमी मॉडल सार्वभौम है और दुनिया भर के लोगों को उसकी नकल करनी चाहिए। हालांकि वे सांस्कृतिक आदान–प्रदान को स्वीकारते हैं, मगर इस बात पर जोर देते हैं कि हर समाज की अपनी संस्कृति होती है और हर देश की प्रगति और विकास के मॉडल का उस देश के सांस्कृतिक मूल्यों के साथ तारतम्य होना चाहिए। आधुनिक बनने का मतलब पश्चिमीकरण नहीं है। आधुनिकीकरण के क्रम में राष्ट्रीय संस्कृति की भावना का आदर होना चाहिए। वे पश्चिम के हित में विभिन्न संस्कृतियों और राष्ट्रीय पहचानों को गड्ड–मड्ड कर देने की कोशिशों का विरोध करते हैं।

– दत्तोपंत ठेंगड़ी

रक्षा बंधन उत्सव (स्वदेशी जागरण मंच जमशेपुर)

रक्षा बंधन का अर्थ है – रक्षा के लिए बंधना एवं बाँधना; परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हुए राष्ट्र की रक्षा के लिए बाँधना एक संपूर्ण राष्ट्र ही हमारी रक्षा कर सकता है। – अरविन्द

दिनांक 02 अगस्त 2012, स्वदेशी जागरण मंच (जमशेदपुर) की ओर से उलगोडा पंचायत में उलगोडा के मुखिया श्रीमति नुदु देवी एवं स्वदेशी जागरण मंच के राष्ट्रीय परिषद सदस्य श्री कौशल किशोर के नेतृत्व में सैकड़ों किसानो ने जूलुस के रूप में उलगोडा के जंगल में पहुँच कर वृक्षों को रक्षा सूत्र बाँधा।

इस कार्यक्रम में उपस्थित लोगों को संबोधित करते हुए श्री कौशल किशोर ने कहा कि आज रक्षा बंधन के अवसर पर बहन भाई को रक्षा सूत्र बाँध कर रक्षा का वचन लेती है। ठीक उसी प्रकार हम सभी उपस्थित ग्रामीण वृक्षों को रक्षा सूत्र बाँध कर अपना जीवन की रक्षा का वचन वृक्ष से लेते हैं तथा उसके सम्वर्द्धन का वचन देते है।

आज रक्षा सूत्र बाँधकर जंगल के सम्वर्द्धन हेतु हमलोग सकल्प लें जिंदा वृक्ष को काटें नहीं, वृक्षों में लगे पत्ता एवं उससे उत्पन्न वनस्पति को हम लोग अपने जीवन में उपयोग कर सकते हैं। जंगल में पाए जाने वाले एक–एक वनस्पति मनुष्य का उपयोगी है। यह हम नहीं भारत के महान मनीषी एवं आयुर्वेदाचार्य चरक ने कहा है।

सभा को संबोधित करते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के श्री अरविन्द जी ने कहा कि भारत वर्ष उत्सवों का देश है, सभी उत्सव हम सबों को कुछ न कुछ संदेश देते है। रक्षा बंधन उत्सव अपने–अपने देश का एक महत्वपूर्ण पर्व है। रक्षा बंधन का अर्थ है – रक्षा के लिए बंधना एवं बाँधना; परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हुए राष्ट्र की रक्षा के लिए बाँधना एक संपूर्ण राष्ट्र ही हमारी रक्षा कर सकता है।

हमारे पूर्वजों ने जिन–जिनको कल्याणकारी देखा उसके रक्षा के लिए तत्पर रहें। आज हमें भी यह सकल्प लें कि प्रकृति, गो, गंगा, गीता की रक्षा बंधन कर ईश्वर प्रदत कल्याणकारी वैभव की रक्षा करें। जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे सभी पुरूषार्थ संभव हो सके।

हालांकि अन्य उत्सवों की तरह रक्षा बंधन उत्सव भी सिमट कर भाई–बहन के त्योहार तक सीमित हो गया है। जबकि सर्वप्रथम देवासुर संग्राम के समय देवराज इंद्र को इंद्रानी ने रक्षा सूत्र बांधा था। समाज के श्रेष्ठ कल्याणकारी विद्वान महापुरूषों से रक्षा बंधन करना, उसकी रक्षा बंधन समस्त राष्ट्र को बाँधता था। मुगल काल में जब माँ–बेटियाँ असुरक्षित हुई तो बहन भाई की रक्षा के रूप में इसका प्रसार हुआ। एक बार अकबर ने अपने सत्ता मद में रक्षा बंधन पर प्रतिबंध लगा दिया था। परंतु श्री पतिमिश्र नामक कवि विद्वान ने उसके आदेश को विफल कर उनके दरबार में ही रक्षा बंधन उत्सव मनाया। हमारे पूर्वजों ने जिन–जिनको कल्याणकारी देखा उसके रक्षा के लिए तत्पर रहें। आज हमें भी यह सकल्प लें कि प्रकृति, गो, गंगा, गीता की रक्षा बंधन कर ईश्वर प्रदत कल्याणकारी वैभव की रक्षा करें। जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे सभी पुरूषार्थ संभव हो सके।

इस सभा को संबोधित करने वालो में अतुल महतो, योगेश्वर महतो, देवीलाल महतो, खगेन हाँसदा, आनंद घांसी, महेन्द्र नायक वासुदेव महतो, अखिल भारतीय विधार्थी परिषद् के विनोद कुमार ने संबोधित किया तथा रामविलास महतो, दीपक महतो, भुखल गोराई, रोहणी महतो, जगदीश गोराई, कालीपद टुडु, सत्यनारायण हेम्ब्रम, राजन सिंह, लालु घांसी, प्रदीप घांसी, ठाकुर दास महतो, हेमन्त महतो, विक्रम महतो, मुकेश कुमार, अरूण कुमार, घुटरा महली एवं सूरज महली आदि अनेक कार्यकर्ता उपस्थित थे। □